गगनाञ्चल

वर्ष 20 अंक 1 जनवरी-मार्च 1997

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशक

मीरा शंकर

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नयी दिल्ली

संपादक

कन्हैयालाल नन्दन

सहयोगी संपादक

अजय कुमार गुप्ता, प्रेम जनमेजय (मानसेवी)

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् भारत सरकार के विदेश मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संगठन है। भारत व अन्य देशों के मध्य सांस्कृतिक संबंधों एवं पारस्परिक सद्भाव को स्थापित तथा संपुष्ट करने के उद्देश्य से 1950 में परिषद् की स्थापना की गयी थी। भारत तथा दूसरे देशों के मध्य इस सांस्कृतिक संवाद के उद्देश्य से आयोजित अपने प्रकाशन कार्यक्रम में परिषद् अन्य गतिविधियों के अतिरिक्त त्रैमासिक पत्रिकाएं भी प्रकाशित करती है जो हिंदी (*गगनाञ्चल*), अंग्रेजी (*इंडियन-होराइजन्स, अफ्रीका क्वार्टरली*), अरबी (*सक़ाफ़त-उल-हिंद*), स्पेनिश (*पपलेस-दे-ला-इंडिया*), फ्रेंच (*रेकौंत्र अवेकलैंद*) और जर्मन (*इंडियन इन डेर जेजनवार्ट*) भाषाओं में हैं। प्रकाशन सामग्री के लिए संपादक 'गगनाञ्चल' से निम्नलिखित पते पर संपर्क किया जाना चाहिए :

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ इस्टेट, नयी दिल्ली-110002

शुल्क दरें

एक अंक	वार्षिक	त्रैवार्षिक
रु. 25.00	रु. 100.00	रु. 250.00
US$ 10.00	US$ 40.00	US$ 100.00
£ 4.00	£ 16.00	£ 40.00

ISSN 0971-1430

आवरण : नरेन्द्र श्रीवास्तव

मुद्रक : विमल ऑफसेट, 1/11804, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

प्रकाशक की ओर से

निश्छल हास्य हमारे जीवन की आवश्यकता है। हास्य की कल्पना संस्कृत काव्य शास्त्र में रस के रूप में हुई है। हास्य-रस को आधार मानकर ही संस्कृत साहित्य के आचार्यों ने इस संदर्भ में अपने मत व्यक्त किए हैं। आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में हास्य रस का प्रथम बार नियमबद्ध उल्लेख हुआ है। संस्कृत के आचार्यों ने हास्य को राग से उत्पन्न माना है। भरत ने इस हास्य-रस को श्रृंगार की अनुकृति के रूप में स्वीकार किया है—*श्रृंगारनुकृतिया तु स हास्य इति संतितः*। शारदातनय ने रजोगुण के अभाव और सत्वगुण के अविर्भाव से ही हास्य की उत्पत्ति बताई है और प्रीति पर आधारित उसे एक चित्तविकार के रूप में प्रस्तुत किया है।

पाश्चात्य साहित्य में 'ह्यूमर' शब्द का मूल लेटिन में खोजा गया है जो तरलता अथवा नमी के लिए प्रतुक्त होता है। परन्तु आधुनिक युग में यह रंजन तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। वास्तव में हास्य एक अत्यंत सूक्ष्म और तरल मानसिक वृति है। विश्व-साहित्य में हास्य की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। इसी प्रकार व्यंग्य भी हमारे जीवन की आवश्यकता बन गया है। हास्य-व्यंग्य की रचनाएं आजकल सर्वाधिक पढ़ी जा रही हैं।

भारतीय साहित्य हास्य-व्यंग्य से परिपूर्ण है, विशेषकर स्वतंत्रता के बाद का भारतीय साहित्य। सजग रचनाकारों ने अपने आसपास की परिस्थितियों को आधार बनाकर महत्वपूर्ण रचनाओं का सृजन किया है। भारतीय साहित्य में हास्य-व्यंग्य की एक सार्थक झलक देने के लिए प्रस्तुत अंक में एक विशेष खंड का आयोजन किया गया है। उर्दू, सिंधी, मलयालम, कन्नड़, तेलुगु, बांग्ला, गुजराती, हिंदी आदि भारतीय

भाषाओं की हास्य-व्यंग्य रचनाएं *गगनाञ्चल* के पाठकों के लिए प्रस्तुत हैं। ये व्यंग्य रचनाएं भारतीय व्यंग्य की प्रकृति और स्वरूप को समझने में सहायक सिद्ध होंगी, ऐसी उम्मीद है। आशा है *गगनाञ्चल* के पूर्व अंकों की तरह इस अंक को भी आपका स्नेह मिलेगा।

मीरा शंकर

(मीरा शंकर)
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
नई दिल्ली

संपादक की ओर से

साहित्य में जितने भी रस होते हैं, उनमें हास्य भी एक रस है। उसकी परिभाषा है, उसके संचारी-व्याभिचारी भाव हैं, उसके प्रकार हैं—मृदु स्मित से लेकर धुंधकारी अट्टहास तक अनेक श्रेणियां हैं। यानी यदि आप शास्त्रीयता के जंगल में घुसकर हास्य का जायजा लेना चाहें तो उस सामग्री की कोई कमी नहीं है। आप जितना चाहें उसका विस्तृत अध्ययन करें। हास्य पर बकायदा थीससें हैं, उनका अवगाहन करें। इसके अतिरिक्त हास्य का बायोलजिकल निरूपण करने के लिए वैज्ञानिक शोध-सामग्री भी मिल जायेगी कि हमें हंसी क्यों आती है? जब हम हंसते हैं तो हमारे शरीर पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है? हंसने में शरीर कितने परिवर्तनों से गुजरता है? हंसने की प्रक्रिया से जुड़े शरीर के किन-किन अवयवों में किस प्रकार के हास्य में क्या परिवर्तन होता है? वैज्ञानिक जीव बड़ा भयंकर होता है। उसने तो यहां तक पता लगा लिया है कि अचानक जब हमारे मुंह से ठहाका निकल पड़ता है तो उसके साथ निकली हुई हवा की रफ्तार क्या होती है? उसका स्वास्थ्य पर क्या असर पड़ता है? न हंसने वाले अथवा कम हंसने वाले व्यक्ति के मानसिक तनाव कैसे ढीले होते हैं? विभिन्न व्यक्तियों में *'सेंस ऑफ ह्यूमर'* नाम तत्व अलग-अलग क्यों पाया जाता है?—आदि आदि।

हास्य पर थोड़ी बहुत विधिवत, यानी शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक दृष्टि से जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से मैंने जब हास्य के उपरिलिखित विवेचन की राह पकड़नी चाही, तो मैंने पाया कि इस सब जानकारी से मैं हंसने वाले व्यक्ति का पोस्टमार्टम कर सकने की क्षमता भले पाल लूं, लेकिन हंसने की क्षमता नहीं पा सकता। इतना

ही नहीं, मुझे लगने लगा कि उस सब सामग्री को पढ़ते-पढ़ते कहीं मेरा *'सेंस ऑफ ह्यूमर'* मर ही न जाए। क्योंकि जब मैं अपने किसी मित्र को हंसते या मुस्कराते देखता तो यह सोचने लगता कि यह हंसी का कौन सा प्रकार है, जो उसके माध्यम से पृथ्वीमंडल पर व्याप्त हो रहा है। और उसके हंसने से हवा का *'डिस्पलेसमेंट'* किस रफ्तार से हुआ। ऐसा करने में जाहिर है कि जिस बात पर हंसी आ रही होती है, उसका आनंद लेने का मौका मेरे हाथ से निकल गया होता। हाथ लगती तो केवल हास्य की चीड़फाड़।

हास्य के साथ एक और वस्तु जुड़ी है व्यंग्य। दोनों का आधार एक ही—विसंगति। हिंदी साहित्य में व्यंग्य पहले हास्य के साथ प्रकट हुआ परंतु स्वतंत्रता के बाद परसाईं, जोशी, त्यागी और शुक्ल ने इसे स्वतंत्र रूप दिया। वस्तुतः भारतीय साहित्य में व्यंग्य के प्रखर होने का कारण स्वतंत्रता के बाद की विसंगति पूर्ण परिस्थितियां हैं। आज हमारे चारों ओर, प्रत्येक क्षेत्र में विसंगतियां भरी हुई हैं। शास्त्रीय पक्ष के जंगल में न उलझकर, हास्य-व्यंग्य की बेकार चीरफाड़ न करके भारतीय हास्य-व्यंग्य का एक स्वरूप ही *गगनाञ्चल* के पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाए। भारतीय हास्य व्यंग्य-साहित्य पर्याप्त समृद्ध है। प्रस्तुत अंक में हिंदी, गुजराती, पंजाबी, बांग्ला, कन्नड़, तेलुगु, सिंधी आदि भाषाओं की रचनाएं आपको इस परिदृश्य से परिचित कराएंगी।

गगनाञ्चल को अपना कर्मठ सहयोग देने वाले, *गगनाञ्चल* के सहयोगी संपादक प्रेम जनमेजय को व्यंग्य विधा में सार्थक लेखन के लिए हरिशंकर परसाई पुरस्कार से पिछले दिनों सम्मानित किया गया। *गगनाञ्चल* परिवार की उन्हें हार्दिक बधाई।

(कन्हैयालाल नन्दन)
संपादक

अनुक्रम

सब मिलकर व्यवस्था को बदलें

डॉ. रामविलास शर्मा

पिछले दिनों दो युवा लेखक जसवीर त्यागी और लालित्य ललित भाषा, संस्कृति और पुरस्कारों की राजनीति पर प्रख्यात आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा के विचार जानने उनके पास पहुंचे। स्पष्टवादी, निर्भय चिंतक तथा अपने प्रखर वक्तव्यों के लिए प्रसिद्ध रामविलास जी ने हिंदी भाषा की दुर्गति और अंग्रेजी भाषा के अकारण महत्व आदि पर अपने जो विचार व्यक्त किए, उन्हें 'गगनाञ्चल' के लिए विशेष रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं लालित्य ललित।

यूरोप की भाषाओं में भले ही विस्तार की दृष्टि से अंग्रेजी बड़ी भाषा है। लेकिन उपलब्धि की दृष्टि से जर्मन और फ्रेंच उनसे आगे हैं लेकिन फिर भी अंग्रेजी का इतना अधिक प्रचार क्यों है?

लेकिन, यह कहना कठिन है कि जर्मन और फ्रेंच उनसे आगे हैं। यूरोप की हर भाषा की अपनी विशेषताएं हैं और इनमें अनेक भाषाएं ऐसी हैं, जिनमें 18वीं, 19वीं सदी के या उससे कुछ पहले बहुत-सा साहित्य रचा। लेकिन अब वे उसी तरह से आगे हैं यह कहना बहुत ही मुश्किल है। मैं उनके आधुनिक साहित्य से बहुत परिचित भी नहीं हूं। इसलिए मैं अधिकार पूर्वक नहीं कह सकता। लेकिन यह मैं जरूर बता सकता हूं कि अंग्रेजी का जो वर्चस्व पिछले कई देशों में दिखलाई देता है। अंग्रेजी का बोल-बाला जैसे भारत में है वैसे जापान में नहीं है, जर्मनी में नहीं है, फ्रांस में नहीं है। जो बाहर भी यात्रा करते हैं वो बताते हैं कि फ्रांस में आदमी अंग्रेजी जानता है। उससे बोलो तो वह कंधे उचका देगा, कहेगा : कि

मेरी समझ में कुछ नहीं आया। वो बाध्य करता है कि आप उससे अंग्रेजी में बोलें। इसी तरह उनके यहां जो वैज्ञानिक संस्थाएं हैं उसमें जो काम होता है वह उनकी भाषाओं में होता है। अंग्रेजी के माध्यम से नहीं होता है। बस अंग्रेजी लोग यूं ही सीखते हैं लेकिन काम अपनी भाषा में ही करते हैं। हमारे यहां एक प्रचार किया गया है कि एक अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक शब्दावली है जिसका व्यवहार हर जगह होता है यह बात सही नहीं है। अंग्रेजी पर ये अपने वैज्ञानिक शब्द इन्हीं भाषाओं से गढ़ते हैं। और जो रूसी में अपनी धातुप्रद है, अपनी क्रियाएं, अपने प्रत्यय हैं और उनके आधार पर बहुत सारे पारिभाषिक शब्द गढ़ते हैं। इसलिए यह कल्पना या धारणा गलत है कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक ही वैज्ञानिक शब्दावली का व्यवहार होता है। मजे की बात यह है कि इनमें बहुत सारे शब्दों के उद्‌भव ग्रीक और लेटिन के ऐसे हैं जिनके प्रतिरूप संस्कृत में शब्द नहीं गढ़ते। बल्कि हम लेटिन और ग्रीक से शब्द उधार ले कर गढ़ते हैं।

मैं एक उदाहरण देता हूं इमली के लिए अरबी में एक शब्द था 'ताहिरे हिंद' हिंदुस्तान का फल। अरबों ने इमली नहीं खाई थी। जब उन्होंने इमली खाई जो हिंदुस्तान का नायाब फल था। उन्होंने उसका नाम रखा 'तमरे हिंद'। यह अंग्रेजी में हो गए 'टेमरे हिंद'। और बोटनी की शब्दावली में टेमरे हिंदी मौजूद है। इस तरह से यह बोटनी का पारिभाषिक शब्द बन गया। इस तरह की हास्यास्पद बातें बहुत सारी हैं।

18वीं सदी में विलियम जोम्स ने लिखा था कि जो लोग भारतीय शब्दों को छोड़कर लेटिन और ग्रीक के आधार पर यहां पारिभाषिक शब्द चलाते हैं उनका प्रेम हास्यास्पद है उनकी इस बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

हमको अंग्रेजी पढ़नी चाहिए, एशिया की भाषाएं पढ़नी चाहिए। यूरोप की भाषाएं पढ़नी चाहिए। लेकिन जिस तरह स्वाधीन देश के नागरिक बाहर की भाषाएं पढ़ते हैं उस तरह से हम को भी ये भाषाएं पढ़नी चाहिए। गुलामी की मनोवृति है कि जो कुछ अंग्रेजी में लिखा है वह सब कुछ अच्छा है। उसे अपने यहां ले आना चाहिए। यह बात छोड़नी चाहिए। इटली, फ्रांस और जर्मनी में वे लोग अपनी भाषा और संस्कृति पर गर्व करते हैं और हर चीज़ अंग्रेजी की स्वीकार नहीं करते हैं, बल्कि मैं कहूंगा कि अंग्रेजी बहुत बड़े स्तर पर व्यवहार में आने वाली भाषा है। दक्षिण भाषा के अधिकांश देश 'स्पेनिश' बोलते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी 'स्पेनिश' बोलने वाले बहुत अधिक हैं और जो यू.एन.ओ. है "राष्ट्रीय संघ" उसमें जो चार-पांच भाषाएं व्यवहार के लिए स्वीकृत हैं उनमें भी स्पेनिश, अरबी, चीनी और हिंदी भी है।

हिंदी अपने यहां व्यवहार में नहीं आती तो बाहर कैसे आएगी? अंग्रेजी का इतना बड़ा प्रचार क्यों है? इसका बहुत बड़ा कारण यहां बोलने वाले अंग्रेजी वाले उपनिवेश हैं। इंग्लैंड से पहले बाहर अमेरिका में उपनिवेश बने। फिर यह स्वतंत्र राष्ट्र बन गया। फिर

न्यूजीलैंड भी अंग्रेजों का उपनिवेश था। कनाडा भी कम से कम आधा अंग्रेजों का उपनिवेश था। वहां फ्रेंच,भी बोली जाती है। लेकिन अधिकांशः जनता अंग्रेजी बोलती है। तो ये बहुत सारे जो अंग्रेजी उपनिवेश कायम हुए इसे सारी दुनिया में बहुत से महाद्वीपों में अंग्रेजी फैली। इसका बड़ा कारण यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य वहां ऐसा साम्राज्य था। जिसमें सूरज नहीं डूबता था। तो जिस साम्राज्य में सूरज नहीं डूबता था वहां भी अंग्रेजी का प्रसार हुआ। यानि अंग्रेजी का प्रसार साम्राज्यवाद के साथ जुड़ा हुआ है। आप कह सकते हैं कि अंग्रेजी राज तो खत्म हो गया। अंग्रेजी राज तो खत्म हो गया लेकिन अमरीकी पूंजीवाद तो जिंदा है और उसकी जगह अमरीकी पूंजीवाद हर जगह अपने पैर फैला रहा है। जहां भी अमरीकी पूंजीवाद का प्रभाव है वहां अंग्रेजी का प्रसार होता है, अंग्रेजी के प्रसार का एक कारण वह भी है।

जॉन शैक्सपीयर अंग्रेजी के एक लेखक थे। जिन्होंने अंग्रेजों को हिंदी सिखाने के लिए एक पुस्तक बनाई थी। उसमें उन्होंने बहुत सारे पारिभाषिक शब्द बनाए थे। और उस समय तो इस तरह पारिभाषिक शब्द नहीं बनते थे। जैसे आज बन रहे हैं। उसमें दिलचस्प बात यह है कि जहाजरानी से संबंधित बहुत सारे शब्द दिए गए हैं जिनके अंग्रेजी शब्द एक है तो हिंदुस्तानी में प्रचलित पांच पर्याय शब्द हैं। ऐसे ही धातु-निर्माण उद्योग हैं या लघु उद्योग हैं या वनस्पति शास्त्र हैं। इनके भी बहुत सारे प्रचलित शब्द उन्होंने अपनी पुस्तक में दिए थे। इनके बाद 19वीं सदी में भारतेंदु से कुछ पहले एक 'फेलन' नाम के विद्वान थे। इंग्लैंड के पढ़े-लिखे थे। यहां पर वह आई.सी.एस. ऑफीसर थे। वे भारतीय भाषाएं जानते थे। उन्होंने उर्दू-हिंदी का एक कोष बनाया था। वे उर्दू-हिंदी को अलग भाषाएं नहीं मानते थे। उनका एक संयुक्त कोष बनवाया था। उसमें उन्होंने बहुत से पारिभाषिक शब्द लिए थे। और उनके पारिभाषिक शब्द चुनने का तरीका यह था कि वो पटना में नार्मल स्कूल की क्लास में जा कर बैठते थे। और देखते थे कि ये लोग गणित कैसे पढ़ाते हैं। बॉटनी कैसे पढ़ाते हैं। वहां जो पारिभाषिक शब्द इस्तेमाल करते थे वे उन्हें नोट कर लेते थे। इस तरह उन्होंने कोष बनाया।

इसका मतलब यह कि 19वीं सदी के उत्तरार्ध में यहां बहुत सारे पारिभाषिक शब्द शिक्षा में पुस्तकों में इस्तेमाल होते थे। उनको बाद में लोग भूल गए। उनकी हिंदी में कोई शब्द कोश नहीं है। अब अंग्रेजी से अनुवाद करके नए शब्द गढ़ना चाहिए। ये स्थिति पैदा हुई।

विश्व की कोई ऐसी भाषा नहीं है जिसकी बोलियां न हो। जब मानक भाषा बनती है तो वह ग्रामीण भाषा के किसी एक के रूप में ही विकसित होती है जैसा अंग्रेजी भाषा में है।

इंग्लैंड में विल्स बोली जाती है जो कि हिस्सा है, जो वहां की मूल भाषा है। अब वहां लो, लोग विल्स बोलते हैं बाकी सब लोग अंग्रेजी बोलते हैं और 'विल्स' रचना और शब्द संपदा की दृष्टि से अंग्रेजी से उतनी ही भिन्न है जितना ''तमिल'' हिंदी से भिन्न है। यदि 'विल्स' का कोई एक वाक्य बोला जाय तो अंग्रेजी जानने वाला समझ नहीं पाएगा।

इतना भिन्न है। ऐसे ही स्कॉटलैंड में 'गिलिक' बोली जाती है। गिलिक बोलने वालों का अनुपात अधिक है। 'विल्स' बोलने वालों से। और उसका कारण यह है कि स्कॉटलैंड में पहाड़ बहुत ज्यादा हैं। ठंड बहुत पड़ती है। इसलिए अंग्रेज कम जाते हैं। प्रसार कम हुआ। और 'विल्स' इधर दक्षिणी पूरब में, हिमालय जहां ज्यादा फैला हुआ था। स्काटलैंड में बहुत से लोग अंग्रेजी बोलते हैं लेकिन वहां 'गिलिक' बोलने वाले भी हैं। इससे पहले कार्नवाल में दूसरी भाषा बोली जाती थी जो समाप्त हुई। यह जो अंग्रेजी भाषा है यह मिडलाइन नामक जनपद की भाषा है और इस जनपद में लंदन एक मुख्य व्यापारिक नगर था। लंदन का महत्व जितना बढ़ा, उतना ही विनिमय का कारोबार यहां अधिक हुआ। उतना ही इस विनिमय के कारण वहां अंग्रेजी का प्रचार-प्रसार अधिक हुआ।

जातीय भाषा का निर्माण होता है तो कैसे होता है? मंडियां आबाद होती हैं। मंडियों में व्यापार होता है। व्यापारियों का आपस में काम चलाने के लिए एक भाषा की जरूरत होती है, तो वह जनपदीय भाषाएं छोड़कर किसी एक को चुनते हैं। इसी तरह से वहां अंग्रेजी का प्रसार हुआ।

हिंदी भाषा क्षेत्र बहुत बड़ा है। इतना बड़ा क्षेत्र चीन को छोड़कर कोई दूसरा नहीं हैं। भौगोलिक दृष्टि से शायद रूसी भाषा का क्षेत्र बड़ा हो। लेकिन जनसंख्या के विचार से चीन ही ऐसा देश है जहां चीनी भाषा का क्षेत्र हिंदी भाषा के क्षेत्र से बड़ा कहा जा सकता है। यह इतना बड़ा क्षेत्र है कि जनपद की बहुत सी भाषाओं का होना स्वाभाविक है और इनका पुराना साहित्य बहुत ही समृद्ध है लेकिन इस तरह की समृद्धि अन्य देशों में भी रही है।

इतने बड़े पैमाने पर नहीं, इतनी बड़ी संख्या में नहीं, लेकिन समृद्धि रही है। जैसे फ्रांस में दक्षिण की जो भाषा है उसे 'प्रवासा' कहते हैं। उसमें बहुत-सा पुराना साहित्य रचा गया था और वो भाषा इतनी समृद्ध थी कि 20वीं सदी में प्रवास काल के लेखक को नोबल प्राइज तक मिला था तो फ्रांस में 'प्रवास काल' की वही स्थिति है जो हिंदी प्रदेश में बृज भाषा की स्थिति है।

लेकिन आज प्रवासा वहां की राजभाषा नहीं है। वहां के सामान्य जनजीवन की भाषा नहीं है। वहां फ्रेंच बोली जाती है। उसी में ही काम होता है। इसी तरह हमारे प्रदेश में जनपदीय बोलियां, भाषाएं पीछे छूट गई हैं। अब सारा काम हिंदी में ही होता है।

यहां के राजनैतिक राजनेता बड़े ही धूर्त हैं। वे हिंदी वालों के वोट से लाभ उठाते हैं और फिर इन्हें चटकाते हैं। इतने प्रधानमंत्री उत्तरप्रदेश से बने हैं लेकिन उत्तरप्रदेश अभी भी बड़े पिछड़े हुए राज्यों में है। जिस प्रदेश में चुनाव लड़ना है तो वहां का विकास करेंगे। पूरे राज्य को, पूरे प्रदेश को नहीं देखेंगे। ये यहां के नेताओं की विशेषता रही है। इसके अलावा वो डरते हैं कि हिंदी प्रदेश पर धन खर्च किया गया, इसका आर्थिक विकास हुआ।

इसका एक प्रांत बना, एक राज्य बना तो दूसरे अहिंदी भाषी राज्य हमसे नाराज हो जाएंगे। इसलिए अखिल भारतीय नेतृत्व कायम रखना है तो हिंदी प्रदेश को धता बताना चाहिए। यह एक बहुत बड़ा कारण है और हिंदी में जो बुद्धिजीवी हैं उनमें जातीय चेतना का अभाव महाराष्ट्र तमिलनाडु की तुलना में ज्यादा है।

एक बात और देखो यह तो हमारा राष्ट्रीय गीत है उसमें पंजाब सिंध गुजरात मराठा द्राविड उत्कल बंगा। अच्छा तो इसमें पंजाब का नाम है, गुजरात का नाम है। द्राविड़ में सारा दक्षिण भारत आ गया। और उत्कल और बंग तो है ही। और बीच का इलाका खाली है। यानि जो सबसे बड़ा प्रदेश है उसका नाम हमारे राष्ट्रीय गीत में नहीं है।

इसलिए रवींद्रनाथ को दोष देना बेकार है। हमारा जो प्रदेश है उसका कोई नाम ही नहीं। कभी संयुक्त प्रांत होता है तो कभी उत्तरप्रदेश होता है और वो भी एक राज्य है, पूरा प्रदेश नहीं है। तो इसलिए गंगा, जमुना उच्छल, जलधि, तरंगा, उच्छल जलधि से संतोष करो। वो भी गंगा की तरह चलायमान है। हमारा प्रदेश पिछड़ा हुआ है इसका कारण यही है कि हमारे लोग जात-बिरादरी से कटे हुए हैं। अपने धर्म से बंधे हुए हैं। हिंदू-मुसलमान का भेद जितना हमारे यहां है उतना भारत के दूसरे प्रांतों में नहीं है, या कम है। इसी तरह जात बिरादरी से यहां सरकारें बनती हैं। यह मुख्य कारण है। जो पुराने संस्कार हैं, जो सामंतवाद से चले आ रहे हैं। उसमें जात-बिरादरी है, ऊंच-नीच का भेद-भाव है। मंदिर-मस्जिद का झगड़ा नहीं है। सौभाग्य से भारत के आधे से अधिक तीर्थ स्थान हमारे प्रदेश में ही हैं। इसलिए यहां संप्रदायवाद का फैलने का जितना सुअवसर हो उतना दूसरी जगह नहीं है और संप्रदायवाद जितना ही फैलता है उतनी ही जातीय चेतना नष्ट होती है। लोग हिंदू-मुसलमान एकता की बात करते हैं। हिंदू-मुसलमानों की एकता या तो राष्ट्रीय पैमाने पर हो सकती है। दूसरे प्रदेशों के पैमाने पर हो सकती है। इसलिए हिंदू-मुस्लिम की समस्या एक से प्रदेश में एक-सी नहीं है। इसलिए प्रदेश के आधार पर जनता का आंतरिक संगठन नहीं होगा। तब तक भारत की एकता को निर्मित नहीं किया जा सकता।

भ्रष्टाचार तो बहुत फैला हुआ है। अवसरवाद भी बहुत फैला हुआ है। लेकिन इससे लोगों में असंतोष भी तो है। तो जो असंतुष्ट हैं और वर्तमान परिस्थिति को बदलना चाहते हैं उनको इकट्ठा करके संगठन बनाना चाहिए और उस संगठन के जरिए काम करना चाहिए। सिर्फ यह कहने से कि भ्रष्टाचार फैला हुआ है तो काम नहीं चलता है। भ्रष्टाचार फैला हुआ है तो क्या हम उसके सामने घुटने टेक दें? एक स्थिति है तो इसके बदलने के लिए हमें दूसरे प्रयत्न करने चाहिए और उसे बदलने के लिए अगर दो फीसदी लोग भी आते हैं तो वे बहुत बड़ा काम कर सकते हैं।

भारत के ऊपर बाहर से आक्रमण हुए तो आक्रमण करने वाले भारत की जनसंख्या के बराबर थोड़े ही थे? बहुत थोड़े ही लोग थे। यहां अगर सौ आदमी रहते थे तो बाहर

से आने वाले केवल दो आदमी थे। लेकिन वो संगठित थे। संगठित होने के कारण वे यहां पर विजय प्राप्त कर सके थे। इसी तरह समाज को बदलने के लिए यदि थोड़े से लोग प्रयत्न करें तो सफलता मिल सकती है वास्तव में राजनीति का संगठन इस तरह से होता है।

कांग्रेस के साथ सारा देश तो नहीं था। शुरू में फिर धीरे-धीरे बहुत बड़ा हिस्सा उनके साथ हो गया। और गांधी जी तो बहुत कुछ अकेले ही संघर्ष करते रहे। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने अकेले ही संघर्ष किया। तो अकेले भी आदमी बहुत कुछ काम कर सकता है। उसके साथ सहयोगी हों तो और बड़े काम कर सकता है। तो इसलिए भ्रष्टाचार फैला हुआ है। इसलिए आंदोलन हो नहीं सकता। संगठन नहीं हो सकता। यह बात सही है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर से पहले एक बहुत बड़े लेखक हुए हैं, जिनको नोबल प्राइज नहीं मिला था। और पिछले जमाने में बहुत से ऐसे लेखकों को नोबल प्राइज मिला है जो बहुत ही साधारण कोटि के लेखक थे। जो रवीन्द्रनाथ की तुलना में बहुत ही नीचे दरजे के लेखक थे। जैसे बोरिस पास्तरनाथ, रूस के लेखक थे। इनको नोबल प्राइज दिया गया। ये उतने बड़े लेखक नहीं थे। शेरूफ्फको को दिया गया था वे बड़े लेखक थे। तो नोबल प्राइज मिला या नहीं मिला। इसका किसी लेखक की महत्ता से अंकन नहीं किया जा सकता। बर्नाडशां को नहीं मिला, गोर्की को नहीं मिला। इसका मतलब यह थोड़े है कि ये बड़े लेखक नहीं थे। तो भारतीय भाषाओं में अनेक बड़े लेखक हुए हैं। रवीन्द्रनाथ बहुत बड़े लेखक थे, इसमें कोई संदेह नहीं। उनको नोबल प्राइज मिला, इससे भारतीय जनता को गौरव का अनुभव हुआ। साहित्यकारों ने भी समझा कि भारत में भी कोई आदमी है जिसे बाहर के लोग स्वीकार करते हैं। लेकिन यहां और बहुत सारे अच्छे लेखक थे।

हर बड़े लेखक की कुछ विशेषताएं होती हैं। तुलसीदास बड़े थे या सूरदास बड़े थे। इस तरह के प्रश्न तो व्यर्थ हैं। ऐसे ही रवींद्रनाथ बड़े थे या प्रेमचंद बड़े थे। ऐसे प्रश्न व्यर्थ हैं। प्रेमचंद की अपनी विशेषता है और रवींद्रनाथ की अपनी विशेषता है। यह व्यक्ति व्यवस्थाओं को पहचानता है फिर काम करता है।

ये जो पश्चिम के देश हैं। ये राजनीति में बड़े चतुर हैं। ये शांति के लिए जिन्हें पुरस्कार देते हैं उनमें जरा ये नाम गिनो तो ऐसे लोगों को शांति के लिए पुरस्कार मिला है जो केवल अशांति के लिए ही काम करते हैं, तो राजनीति तो काम करती है। बोरिस पास्तरनाथ को जो पुरस्कार मिला, वह बिल्कुल राजनीति से प्रेरित था लेकिन सभी लोगों को साहित्य में नोबल पुरस्कार राजनीति के कारण मिला हो ऐसा नहीं है।

विज्ञान में सी.बी. रमण को परुस्कार मिला। विज्ञान में भी राजनीति चलती है। लेकिन सी.बी. रमण बड़े ही योग्य वैज्ञानिक थे। उनका सम्मान हुआ यह भारत में वैज्ञानिक प्रगति की सूचना भी थी। पश्चिमी देशों द्वारा।

पुरस्कार तो उत्पादन नहीं है लेकिन 'पगार' की भूमिका कर सकते हैं। जैसे मजदूर

को पगार देते हैं। वैसे ही पारिश्रमिक के तौर पर लेखक भी बोनस ले लेता है। यही पुरस्कार है। इधर रायल्टी कम मिली होगी तब पुरस्कार लेते हैं। छोटे-बड़े पुरस्कार हों तो उनकी बात अलग है। मेरा कहना यह है कि भारत में ऐसे विद्वानों की सभा होनी चाहिए जिसका बहुत बड़ा सम्मान हो, जिसका कि वह प्रमाण पत्र दे दें कि यह बहुत बड़े लेखक हैं। इससे उसे प्रसन्न होना चाहिए। ये पुरस्कारों की धनराशि जितनी बड़ी होती है तो लोग समझते हैं कि जिसको मिला वह उतना ही बड़ा लेखक है। यह बहुत गलत तरीका है। और यह खास तौर पर हिंदी प्रदेश में है। बिहार अलग पुरस्कार देता है। मध्यप्रदेश राज्य अलग देता है। उत्तरप्रदेश का राज्य अलग पुरस्कार देता है। ये सब हिंदी प्रदेश वाले राज्य हैं।

मेरा तो कहना है कि सब हिंदी प्रदेश वाले पैसा इकट्ठा करो और साक्षरता प्रसार में खर्च करो। हमारे यहां निरक्षरता सबसे ज्यादा है। हमें शर्म आनी चाहिए। और लाखों-करोड़ों रुपया तुम लेखकों में बांटते हो अगर जनता को शिक्षित करो तो क्या लेखक इससे नाराज होंगे? उनके पढ़ने वाले पढ़ेंगे। किताबें उनकी ज्यादा बिकेंगी। इससे कुल मिला कर जो आमदनी होगी। उसे इस पर खर्च क्यों नहीं करते? तो जनता के बारे में वे सोचते नहीं। हर बड़ा पूंजीपति समझता है-उसने पुरस्कार चलाया तो मेरा नाम पीछे रह गया, मुझे भी चलाना चाहिए। अपने नाम के लिए करते हैं। एक तरह से जनता की आंखों में धूल-झोंकने के लिए करते हैं कि हम साहित्य के लिए बहुत सही काम कर रहे हैं।

किताब के पाठक बहुत सारे हैं लेकिन हिंदी में जितनी महंगी किताबें छपती हैं। उतनी बांग्ला में, मराठी में, तमिल में नहीं छपती है। जहां हिंदी के बहुत सारे शत्रु हैं। उसमें एक प्रकाशक भी है। वो पुराने बनिए की तरह से तुरंत बहुत सारी रकम समेट लेना चाहता है और पाठक का भरोसा कम करके पुस्तकालयों में महंगी किताबें घूस देकर वहां रखना चाहता है। इस तरह से वह वहां मुनाफा कमाता है। इसलिए बहुत से प्रकाशक खुल्लम-खुल्ला कह भी देते हैं कि आप तो कहते हैं कि पुस्तकें सस्ती छापो, हमको घूस देना पड़ता है। उसके लिए हम क्या करें? अब जितनी रायल्टी यह लेखक को देते हैं उससे ज्यादा यह कमीशन ये बुक सेलर को देते हैं। अगर लेखक को पंद्रह परसेंट कमीशन देते हैं तो बुक सेलर को ये चालीस परसेंट कमीशन देते हैं। तो बुक सेलर और प्रकाशक मिलकर पाठक को लूटते हैं और लेखक को लूटते हैं। इसलिए जब तक सहकारिता उद्योग की बात नहीं होगी तब तक इस सहयोग से प्रकाशन संस्थाएं नहीं बनाई जाएंगी तब तक यह स्थिति नहीं बदल सकती।

कई प्रकाशक ऐसे भी हैं जिन्होंने प्रेमचंद समग्र प्रकाशित किए हैं जिनकी कीमत 9 हजार रुपए से कहीं ज्यादा है। ये प्रकाशक पुस्तकालयों का भरोसा करते हैं। ये समझते कि वहां ये पुस्तकें खप जायेंगी। प्रेमचंद पढ़े तो जाते ही हैं। इसलिए जनता तक प्रेमचंद पहुंचे या ना पहुंचे पुस्तकालयों में पहुंच जाना चाहिए और वहां से हमें एकमुश्त मुनाफा

मिल जाना चाहिए। ये प्रकाशक की नीति है। बांग्ला में शुरु से ही सस्ती किताबें छापने का चलन है। मेरे पास माईकल मधुसूदन दत्त की समग्र रचनावली है जो मैंने सन् 37 में खरीदी थी। उसका मूल्य केवल सवा रूपए है और सन् 62 के आस-पास मैं कलकत्ता गया था। वहां बंगी परिषद् ने मुझे एक पुस्तक भेंट की। 'चंडीदास की रचनावली' तो उसमें जिल्द वगैरह कुछ नहीं थी। मामूली अखबारी कागज लगा हुआ था। दो कॉलम में छपाई थी। वहां के श्रेष्ठ विद्वान शोधकर्त्ता हैं उन्होंने उसका संपादन किया था। इतनी मोटी किताब उसका दाम था पांच रुपए। मुझे तो मुफ्त में मिल गई थी। तो इस तरह तब बड़ी सस्ती किताबें थी।

अच्छा, भारतेंदु समग्र वगैरह जो छपा है तो इनके अक्षर बहुत छोटे हैं। इनके पढ़ने में असुविधा होती है तो शोध करने वाले हैं उन्हें कोई लेख देखना हुआ। ये उनके काम की है। लेकिन बांग्ला में जिस तरह से शरतचंद्र की ग्रंथावली छपी है। बंकिम ग्रंथावली छपी है। मैसूर की ग्रंथावली छपी है। और रवींद्र की ग्रंथावली भी छपी है। ये सब बंगाल की सरकार ने छापा है और इसी तरह से सुब्रमण्यम भारती की ग्रंथावली राजगोपालाचारी के समय में तमिलनाडु की सरकार ने छापी थी। अब मुझे भारती की पत्नी ने बताया कि सरकार की वजह से हमारे घर का सारा खर्च उस रायल्टी की वजह से चल रहा है यानी सरकार छापे और वितरित करे और मुनाफा सीमित रखे तो उसका बहुत बड़े पैमाने पर प्रसार होगा।

इसलिए ये जो प्रकाशक हैं, इनकी जो नीति है, वह बहुत बड़ी बाधा है हिंदी के प्रसार में। लेकिन तमिलनाडु में हुआ, बंगाल में ऐसा हुआ तो हमारे यहां ऐसा क्यों नहीं हो सकता?

कागज महंगा हुआ क्या। महंगाई सारी हिंदी प्रदेश में बड़ी है। इधर टाइम्स ऑफ इंडिया में अशोक वाजपेयी का एक लेख छपा। वे केरल गये थे। वहां एक साधारण कवि था। इधर लोग उसका नाम भी नहीं जानते। उसकी कविता पुस्तक को लेकर समारोह हो रहा था। तो वहां बोलने के लिए नम्बूदरी पांड्या आये थे। वहां अशोक वाजपेयी ने कहा—कि वे 90 के आसपास हैं, शरीर शिथिल है। लोग वहां इस कवि के उदाहरण दे रहे थे। बिना टेक्स्ट को सामने रखकर। यानि जो लोग बोल रहे थे, सभी कुछ न कुछ उद्धृत कर रहे थे। अशोक वाजपेयी ने कहा कि मुझे उत्तर-भारत में कोई भी ऐसा राजनीतिज्ञ नहीं मिला तो इस तरह के किसी भी हिंदी के पुराने या नए कवि की कविता को उद्धृत कर सके।

तो हमारे यहां राजनीतिज्ञ हमारी भारतीय संस्कृति से दूर होता चला गया है। ये स्थिति दूसरे प्रदेशों में, खास तौर पर केरल में नहीं है।

यह बात सही है कि पूंजीवाद का संकल्प जितना गहरा होता है उतनी ही समाज की बातें पीछे छूट जाती हैं। जो लोग विदेशी पूंजीपतियों पर एहसान करते हैं वे उनसे पैसा भी

पाते हैं आज जो भ्रष्टाचार बढ़ रहा है उसमें विदेशी पूंजी का बड़ा हाथ है। जहां-जहां विदेशी पूंजी गई है वहा उदारीकरण के साथ अपराधीकरण में वृद्धि हुई है।

भारत में समाज के बारे में सोचने वाले लोग काफी अधिक हैं। लेकिन जब तक व्यवस्था नहीं बदली जाएगी, तब तक ये लोग कुछ नहीं कर सकेंगे। इसलिए सबको मिलकर प्रयत्न करना चाहिए कि मिलकर व्यवस्था को बदलें। □

प्रस्तुति : लालित्य ललित

गुप्तकालीन नारी-शृंगार प्रसाधन

डॉ. राम स्वरूप
कु. पूनम स्वरूप

शृंगार नारी की आवश्यकता है। भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग शृंगार मात्र सौंदर्य कारक ही नहीं है, अपितु अनेक संवेदनाओं से भी जुड़ा हुआ है। नारी स्वयं को सुंदर तथा आकर्षक दिखाई देने के लिए अनेक उपायों तथा प्रसाधनों का प्रयोग करती है। प्राचीन भारत में इस संदर्भ में क्या स्थिति रही है इस प्रस्तुत खोजपूर्ण आलेख में देखा जा सकता है।

शृंगार करना-आकर्षक दिखना मानवीय चेतना में स्वतः विद्यमान है। नारी-मन की सौंदर्य प्रसाधन के प्रति लालसा मात्र सुहाग का प्रतीक ही नहीं है, अपितु इसका भावनात्मक स्वरूप भी है जो प्राचीन काल से साहित्य, कला, संस्कृति एवं शारीरिक औषधिक रूप में मानवीय जन-जीवन से जुड़ा है। अपने को सजाकर-संवारकर रखने की सनातन नारी-प्रवृत्ति ने सोलह शृंगार को जन्म दिया। प्राचीन सौंदर्यबोध, पुरातत्व अन्वेषणों से भी यह प्रमाण प्राप्त हुए हैं कि मोहनजोदड़ो-हड़प्पा संस्कृति की स्त्रियों में सुव्यवस्थित आकर्षक केश विन्यास के रूप में प्रचलन था। सोने, चाँदी, पन्ना, मूंगा, हाथीदांत आदि के बहुमूल्य आभूषण स्त्री-पुरूषों दोनों को प्रिय थे। उत्खनन से खंडितावस्था में अनेक प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधन-उपकरण प्राप्त हुए हैं। दर्पण, काजल, सिन्दूर, हाथी दांत की कंघियों, अंजन-शलाका अनेक विलास सामग्री का उपयोग हड़प्पा संस्कृति में दिखायी पड़ता है।

मोहनजोदड़ों से प्राप्त नृत्यांगना की एक कांस्य मूर्ति प्राप्त हुई है, जो सर्वाधिक

महत्वपूर्ण है। 11.5 से.मी. ऊंची नर्तकी के हाथ-पैर अधिक लम्बे हैं। एक हाथ कटि पर है और पैरों में गतिमयता है। मूर्ति के केश-विन्यास कलात्मक है। कला में प्राण प्रतिष्ठित करती इस नर्तकी की कास्य प्रतिमा भारतीय धातुमूर्ति-कला का सबसे प्राचीन उदाहरण है।

महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में जीवन की लीला विलास वैभव, ललितकला की साहित्य शृंगार का सुंदर चित्रण है जिनमें—ऋतुसंहार, मेघदूत, रघुवंश और कुमार सम्भव काव्य ग्रन्थ हैं। नाटकों में—मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञानशाकुन्तल हैं। इसके अतिरिक्त गुप्त कृतियों में वराहमिहर की 'बृहत्संहिता' हर्ष का 'मृच्छकटिक' बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और वात्स्यायन का 'कामसूत्र' प्रमुख है। आयुर्वेद साहित्य, बौद्ध ग्रन्थों-जातक, विनय पिटक आदि अनेक ग्रन्थों में शृंगार प्रसाधनों का उल्लेख हुआ है।

वात्स्यायन के 'कामसूत्र' (ईसा की तीसरी सदी) गुप्त काल की उत्कृष्ट कृति में तत्कालीन समाज का वर्णन स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है। 'कामसूत्र' के रचयिता का कथन है कि नारियों को चौसठ अंग विद्याओं का अध्ययन करना चाहिए। विश्व का यह प्रथम ग्रंथ है जिसमें काम को वैज्ञानिक मानकर व्याख्या की गई है और कामशास्त्र को पठन-पाठन का अनिवार्य अंग माना गया है। सज्जन पुरुषों के सम्पर्क में आने वाली स्त्रियों, वेश्यायें, राजपरिवार के राजकुमार-राजकुमारी, उच्च अधिकारिएं की वनिताएं, कन्यायें और सभी प्रकार के नर-नारियों के शरीर मंडन और काय-प्रसाधनों का ज्ञान इसमें उपलब्ध है।

कामसूत्र ग्रंथ में वर्णित चौसठ कलाओं में से अनेक कलाएं शृंगारोपयोगी हैं जिनमें विशेषक, अंगरागादि लेपन, रूप बनाना (मेक अप) केश बनाना, माला गुंथना, इत्र आदि सुगन्धित द्रव्य बनाना, आभूषण धारण, असुन्दर को सुन्दर बनाना, रत्न परीक्षा, मालिश करना, केश मार्जन-कौशल हैं। कामसूत्र की प्रोषितपतिका नायिका (पति के परदेश गमन पर) पत्नी के आदर्श रूप में दिखायी पड़ती है जो तप का जीवन व्यतीत करती है। सौभाग्यवती स्त्रियों के लिए आभूषण शृंगार का आवश्यक अंग था। वात्स्यायन ने निर्देश दिया है कि स्त्री को पति के समक्ष बिना गहने या आभूषण धारण किये नहीं जाना चाहिए।

राजा हर्ष के संरक्षित साहित्यकार वाणभट्ट ने 'कादम्बरी' में राजा के स्नान-प्रसाधन का जो चित्रण किया है वह भी वात्स्यायन के वर्णन से साम्य रखता है। वाणभट्ट लिखते हैं कि राजा को व्यायामशाला के बाद आंवलों (अमलक) का उबटन लगाकर शरीर को उत्सादन और परिमर्दन किया जाता और फिर स्नानागार की स्फटिक शिला पर बैठाया जाता जहां स्वर्ण पात्रों में सुगन्धित जल भरा रहता था। वेश्याएं सोने, चांदी, पन्ने और स्फटिक के कलशों से जल डालकर राजा को स्नान करातीं। स्नान के उपरान्त विलेपभूमि (प्रसाधन कक्ष) में स्वेत वस्त्र का जोड़ा धारण कर सिर पर रेशम का वस्त्र लपेटकर चन्दन, कस्तूरी, कपूर और केसर से शरीर को सुगन्धित किया जाता।

आयुर्वेद साहित्य 'चरक संहिता' और 'सुश्रुत संहिता' जनकल्याण हेतु गुप्तकाल से

पूर्व रची गयीं। गुप्तकाल में विख्यात तंत्रशास्त्री नागार्जुन था जो बौद्ध धर्म का अनुयायी था। उसने 'रस चिकित्सा' का आविष्कार किया जो रसायन और आयुर्वेद के इतिहास में अनोखा कार्य था। अन्य बौद्ध साहित्य में भी स्थान-स्थान पर सौन्दर्य प्रसाधनों की चर्चा की गयी। जातक, विनय पिटक और ब्रह्मजाल सूत्र में भी शरीर सज्जा और शृंगार प्रसाधनों का उल्लेख हुआ। उत्सादन : (मधुर गंधी वस्तुओं का त्वचा पर विलेपन), परिमर्दन (त्वचा-मालिश), स्नान (त्वचा व शरीर के सभी अंगों की जल द्वारा सफाई), आदर्श (रूप छवि को दर्पण में निहारना), अंजन (नेत्रों में सुरमा लगाना-लोचनांजन), माल्य विलेपन (ग्रीवा में माला पहनना), मुखचर्ण (चेहरे पर पाउडर लगाना), मुखालेपन (मुख पर सुगंधित लेप), हस्तबन्धन (हाथों में भुजबन्द पहनना), शिखा बन्धन (केश सज्जा या वेणी प्रसाधन), मणि (रत्नो को पहनना), उदातानी (दिग्दर्शनी (स्वर्ण-चांदी के तारों से कशीदाकारी वस्त्र पहनना) प्रमुख हैं जो उत्कर्ष सौन्दर्य-चेतना को उद्‌भाषित करती है।

गुप्तकालीन भारतीय सुन्दरियों के रूप-प्रसाधन अद्वितीय रहे हैं। आयुर्वेद साहित्य से वे भली प्रकार परिचित थी। उद्धर्वन (उबटन), उत्सादन, परिमर्दन करना शरीर सौष्ठव का अनिवार्य अंग था जिसके द्वारा युवतियां कोमलांगी हुआ करती थीं। आयुर्वेदाचार्य शांर्गधर ने उद्धर्वन को काय-संवर्धन हेतु उपयोगी बताया है। उनका निम्न श्लोक इस तथ्य को स्पष्ट करता है।

उद्धर्तनं कफहरं भेदसः प्रतिलायनम्।
स्थिरीकरणमंगानां त्वक्प्रसादकरं परम्।।

उत्सादन के द्वारा रंग निखरता है। उद्धर्तन कफ को दूर करता है। त्वचा को कान्तिमान, रूपाकृति को दीप्तिमान बनाने के लिए सुगन्धपूर्ण लेप किया जाता। परिमर्दन के द्वारा शरीर को सुडौलता-सबलता मिलती है इसके लिए मालिश भी की जाती है जिससे मोटापा कम होता है।

उत्सादनाद् भवेत्सतरीणां विशेषात् कांतिमद्वपुः।।
तेजनं त्वम्मंतस्यागनः सिरामुखविवेचनम्।
उद्घर्षण त्विष्टकया कण्डूकोठ विनाशनम्।

प्राचीन काल में रूप-लावण्य को दीर्घ काल तक कान्तिमय रखने के लिए स्त्री-पुरूष दोनों ही प्रयत्नशील रहते थे। दोनों ही अंगराग लगाते। महाकवि कालिदास ने मधुर गंध से बने अंगराग (रघुवंश 12 सं. 27), हरिश्चंदन से बने अंगराग (रघुवंश 6-60), अगरू या अगर से बने अंगराग (ऋतुसंहार सं. 2-2, केवड़े से बने सगुन्धित, (पराग-रज से बने) चूर्ण का अंगराम (रघुवंश 4 सं. 55) का उल्लेख अपनी कृतियों में किया है। काय प्रसाधन

के लिए विभिन्न प्रकार की उपलब्ध वानस्पतिक द्रव्यों जिनमें—चन्दन, अगरू, काला-गुरू (काला अगर) कुंकुम, कपूर प्रमुख थे। मुखाकृति को लावण्ययुक्त बनाने के लिए होठों पर अलता लगाकर (आलक्तम् विशिष्टरागार्थम) उस पर मोम लगा देती जिससे रक्तवर्णी रंग पक्का हो जाये। कपोलों पर अलता फेरकर लोध का चूर्ण (लोध्रचूर्ण) लगाते थे।

शृंगार प्रसाधनों में अनेक प्रकार के सुगन्धित तेलों-द्रव्यों द्वारा त्वचा मालिश (परिमर्दन) की जाती जो इंगुदी के फल मेनसिल और हरताल-चन्दन से बनाया जाता, इससे त्वचा पर कान्ति आ जाती थी। एक अन्य सुगन्धित तेल के लिए कस्तूरी, कपूर, केसर, दाल चीनी के मिश्रण में मौलश्री के कोमल पुष्पों को मिलाया जाता इसके मिश्रण से त्वचा को स्निग्धता प्राप्त होती थी। त्वचा लेप के लिह खश (उशीर) चन्दन युक्त अनुलेप करना और अंगों की कान्ति हेतु अंगराज का उबटन-परिमर्दन भी करते थे। तदुपरांत शरीर पर लगे उबटन-लेप को स्वच्छ जल में गुलाबजल, केवड़ा डालकर शरीर को धोया जाता। विवाह के अवसर पर वधु का हल्दी-विलेपन करना, उबटन लगाना परम्परागत शृंगार था।

अमरकोश में 'विशेषक' का उल्लेख करते हुए उसके अनेक पर्याय दिए हैं—पत्र लेख-पत्रांगुलि-तमालपत्र-तिलक-चित्रकाणि विशेषकम्।' यह मुखाकृति पर विभिन्न रंगों, बिन्दु-आकारों से सजाया-अलंकृत किया जाता। कपोल सज्जा कई रूप में की जाती। श्वेत चंदन की बिन्दियों से एक वृत की संरचना कर मध्य में कुंकुम की बिन्दी लगाती जाती। चन्दन की बिन्दुदार रेखाओं को ठोडी से कपोल व कर्णान्त तक खींचकर पत्तियों से अलंकृत कर दिया जाता, इसे 'पत्रलेख' या 'पत्र विशेषक' कहा जाता। शुक्ला गुरू और गोरोचन के मिश्रण से जो श्वेतवर्णीय लेप बनता उसी से विशेषक लिखा जाता। गुप्तकाल की सुन्दरियां अपने प्रसाधन में स्तनों की सुडोलता के लिए कोमलाघातों से लेप-परिमर्दन करके अगरू, कुंकुम, प्रियंगु, चन्दन, केसर, कस्तूरी, गोरोचन जैसे मधुर गंधी द्रव्यों का अनुलेपन करके, विभिन्न आकार-प्रका के चित्रांकन किया करती थीं। (ऋतुसंहार 6 सं-14)

अलक्तक व लाक्षारस (अलता, महावर-स्त्रियों के पैर रंगने का द्रव्य-'आर्द्रालक्तकम-स्याभ्रणं'-मालविकाग्निमित्र अं. 3 श्लोक 13; 'नितान्तलाक्षारसरागरंजित-ऋतुसंहार' 1 सं. 5, 'आलक्तकपाटलेन'-कुमार सम्भव 5 सं. 34 श्लोक, पांव आकर्षक एवं मुलायम दिखायी पड़े इसके लिए पग-स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया जाता। धुले हुए साफ पैरों की एडी में तेल लगाया जाता जिससे वह मृदुल बने रहें। धो-पोंछकर महावर या अलता को पैरों के तलवों में कलात्मक ढंग से लगाया जाता। महावर लगाने का प्रचलन आज भी भारत में दिखायी पड़ता है। महावर की तरह मेंहदी भी शृंगार का प्रसाधन रहा। मेंहदी रचे हाथ स्त्रियों की शोभा बढ़ाती है। सोलह शृंगार में मेंहदी का विशेष महत्व है जिसे हथेली-पांव के तलवों में कलात्मक ढंग से लगाना एक कला माना गया है। प्राचीन काल से वर्तमान तक भारत के सभी भागों में मेंहदी नारी-मन को प्रिय रही है।

मेघदूत में कवि कालिदास उज्जयिनी की कमनीय युवतियों के केशों में बसी सुगन्ध का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि वहां की अटारियों से, भवनों की जालियों से निकलता-फैलता सुगन्धित धुआं वातावरण को सुरभित करता है। प्राचीन साहित्य में बालों को सौन्दर्य-बन्धन में बांधने एवं कलात्मक रूप प्रदान करने के लिए शिखाबन्धन वेणी-प्रसाधन, केश-कलाप, केश-सज्जा शब्दों का प्रयोग हुआ है। लम्बे, काले, पतले, कोमल केशों के प्रति नारियों में अत्याधिक रूचि थी। कटि पर्यन्त लम्बे चमकीले केश सौभाग्य का प्रतीक समझे जाते। केशवर्धनार्थ गोखरू, तिल के पुष्प एवं शुद्ध घी का मिश्रण-लेप एवं मालिश की जाती थी। स्नान के बाद केशों को धूप-हवा में सुखाया जाता। थोड़े गीले रहने पर अगरू या कालागुरू, लोधचूर्ण, चन्दन की धुनी से बालों को सुवासित किया जाता ('शिरांसिकालागुरुधूपितानि कुर्वन्ति नार्यः' ऋतुसंहार 5 स. 15. धूपाश्यानकेशान्तं, रघुवंश 17-22 और स्नानार्द्रमुक्तेष्वनु-धूपवास रघुवंश 16 सं. 50); बालों को शलाका में लपेटकर पुनः सुगन्धित किया जाता, जिससे बाल स्निग्ध, घुंघराले (छल्लेदार) और सुगन्धित हो जायें।

केश-संवारने के लिए शिखाबन्धन किया जाता। द्विभागों में विभक्त केशराशी में कलात्मक चोटियां एवं आकर्षक जूड़े के फंदे में कुरवक के कोमल पुष्प-सज्जा की जाती थी। ऋतु अनुसार पुष्पों का चयन किया जाता। वर्षा के आगमन पर अपनी मांग कदम्ब-पुष्पों से शोभित करती। काले बालों में सफेद गज़रा गुंथना मोतियों एवं कलियों की लड़ी लगाना तत्कालीन स्त्रियों को अधिक प्रिय रही। पावस सी पुष्प कलियों को नारी मांग में सजाती थी और घुंघराले पतले बालों में सफेद जूही (कुन्द) की कलियां, मन्दार के पुष्प, केसर के नव पल्लव गूंथती थी। घुंघराली लटों को कपोल तक लटकाने की प्रथा गुप्तकालीन मूर्तिशिल्प एवं चित्रकला में दिखायी पड़ती है। महाकवि कालिदास ने अपने काव्य ग्रंथ 'मेघदूत' में उल्लेख किया कि—प्रिय के वियोग में यक्ष-पत्नी व्याकुल अवस्था में केश सज्जा और अलंकरणों का परित्याग करती है। अपने नेत्रों में अंजन नहीं लगाती। इस तरह अन्य नारियां अपने प्रियतम से अलग रहकर विरहणी (प्रोषित पतिका नयिका) केश सज्जा एवं शृंगार में रूचि नहीं लेती थी। वह केवल बालों को सुखाकर एक ही वेणी बनाकर सामान्य रूप से लपेट लेती थी। 'बृहत्संहिता' में केशों को आकर्षण बनाने के लिए केश-रंजन, धोने, सुगन्धित केश-प्रक्रिया का उल्लेख मिलता है।

समाहार रूप में, प्राचीन भारतीय नारी ने उपलब्ध नैसर्गिक शृंगारिक प्रसाधनों का भरपूर प्रयोग किया, लेकिन आज की आधुनिक महिला विविध प्रकार के रेडिमेड सौन्दर्य-प्रसाधन का उपयोग कर रही है। क्रीम, पाऊडर, बिन्दी, लिपस्टिक, बॉडी लोशन, शैम्पो, परफ्यूम, साबुन एवं ब्यूटी पॉर्लर लेडिज हेयर कटिंग सैलून, हैल्थ क्लब, व्यायामशालाओं में जाकर अपने आत्मघाती सौन्दर्योपासना में व्यस्त रहती है। □

मेरे बायोलॉजी टीचर

डॉ. समतीन्द्र नाडिग

अनेक पुरस्कारों से सम्मानित वरिष्ठ कवि, कहानीकार एवं आलोचक डॉ. सुमतीन्द्र नाडिग कन्नड भाषा के प्रख्यात साहित्यकार हैं। 1935 में जन्में डॉ. नाडिग गोवा के एक कालेज में अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष रहे; उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका गये; स्वयं किताबों की दुकान तक खोली। इसी से पता चलता है कि उनके अनुभव का दायरा कितना विशाल है। दो दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के अध्यक्ष। प्रस्तुत है गगनाञ्चल के लिए विशेष रूप से प्रेषित उनकी कहानी, जिसमें दो मजेदार चरित्रों टी.एम. और एस. एम. के माध्यम से मानव मनोविज्ञान को समझने में बड़ी सहायता मिल सकती है।

एक शाम जैसे ही मैं गांधी बाजार पार करके अंजनेया स्ट्रीट में अपने घर की तरफ मुड़ा तो संयोग से अपने हाई स्कूल के अध्यापक एस. मुनीयप्पा से मेरी भेंट हो गयी। "सर, आप इधर कैसे?" मैं आश्चर्य से कह उठा। उस गंजे, तोंदल, ठिगने आदमी ने ध्यान से मेरी ओर देखते हुए पूछा, "तुम ... कौन ...?" "मैं? मैं चंद्रू हूं सर, आपका हाईस्कूल का छात्र।"

"ओ ... चंद्रू। तुम्हें देखे तो एक अर्सा हो गया।" रसायनविज्ञान के मेरे अध्यापक मुनीयप्पा ने कहा। अचानक एक विचार मेरे दिमाग में कौंध गया कि कुछ वर्ष बाद मैं भी उन जैसा ही दिखने लगूंगा। "सर, आजकल आप क्या कर रहे हैं?" मैंने पूछा। "मैं रिटायर

हो चुका हूं, पर जिन्दगी से रिटायर नहीं हुआ अभी।" उन्होंने कहा और मुस्करा दिए।

अपने हाई स्कूल के दिनों में हम उन्हें 'एस. एम.' कहा करते थे। उनके और हमारे जीव विज्ञान के अध्यापक टी. माध्वाचार, जिन्हें हम 'टी.एम.' कहते थे, के बीच प्रतिद्वंद्विता थी। 'एस.एम.' से हमारा मतलब 'शार्ट मैन' अर्थात ठिगना आदमी, और 'टी.एम.' से 'लांग मैन' अर्थात् लम्बा आदमी हुआ करता था। यह बात हमारे अध्यापकों के कानों तक पहुंच गयी थी। मैं टी.एम. का चहेता छात्र था, और रंगनाथ एस.एम. का। अध्यापकों के बीच की प्रतिद्वंद्विता ने हमारे संबंधों के बीच भी जड़ें जमा ली थीं। जैसे यह सब मुझे याद है, उसी तरह शायद उन्हें भी याद हो। उन्होंने पूछा, "तुम्हारा वह लम्बा आदमी कहां है?" इतना कहकर वे मुस्करा दिए।

"सर, मैं उनके बारे में भी बताऊंगा। लेकिन पहले आप मेरे घर चलिए। बहुत नजदीक है।" मैंने कहा। कुछ कदम चलने के बाद उन्होंने पूछा, "कितनी दूर है घर?"

"बस कुछ ही दूरी पर ...", मैंने चम्पा के एक पेड़ की तरफ इशारा करते हुए कहा, "वो रहा सामने।"

"बच्चे कितने हैं?" उन्होंने पूछा।

"चार हैं, सर", मैंने कहा। "तीन बच्चे हमारे हैं, और चौथा गोद लिया हुआ है।" वे हैरान हुए कि जब पहले से मेरे तीन बच्चे हैं, तो एक और बच्चे को गोद लेने की क्या जरूरत थी। मैंने कहा, "जब गोद लिए बच्चे को आप देखेंगे तो आपका भी मन वैसी ही बच्ची गोद लेने को करने लगेगा।"

"क्यों? क्या माता-पिता विहीन वह लड़की बहुत सुंदर है?"

"मैं उसके पिता को नहीं जानता। हां, उसकी मां गोरी-चिट्टी है। क्योंकि यह काले रंग की थी, इसलिए इसे किसी ने लेना पसंद नहीं किया।" मैंने कहा। इतने में हम घर के गेट तक पहुंच गये और मेरा काले रंग का कुत्ता मेरे अध्यापक की ओर भौंकता हुआ और मेरे लिए अपनी पूंछ हिलाता हुआ लपका।

मैंने कहा, "सर, यही मेरी गोद ली हुई बेटी है। नाम है जूली।" और तब मैंने 'फ्रेंड ... फ्रेंड' शब्द को दो बार दोहराया ताकि जूली अजनबी व्यक्ति को आने दे। "सर", मैंने अपने अध्यापक से कहा, "जूली बड़ी जल्दी दोस्ती कर लेती है। आप क्षण भर को यहीं खड़े रहिए। यह आपको सूंघेगी और तब आपका स्वागत करेगी। फिर आप बेधड़क अंदर जा सकते हैं।" जूली जब मेरे अध्यापक को सूंघ चुकी तो मैंने उसे हट जाने को कहा। हम जाकर बरामदे में बैठ गये। मैंने अपनी पत्नी और बच्चों का अपने अध्यापक से परिचय कराया। मेरी बेटियों ने टी.वी. चला दिया था। शाम के सात बज चुके थे। मेरी पत्नी ने हम दोनों को कॉफी बनाकर दी और तब बेटियों के पास जाकर टी.वी. देखने लगी। कॉफी के घूंट लेते हुए मैंने बातचीत शुरू की, "सर, थोड़ी देर आपने टी.एम. की बात की थी।

मुझे तो उनसे मिले काफी समय हो गया है।"

"मैं सोमवार को उससे मिला था। दरअसल, वही मुझसे पहले बोला।"

"क्या? आप लोगों की आपस में बोलचाल भी बंद थी?"

"अगर वह मुझसे न बोला होता तो मैं उसे बुला लेता। उससे बात करने में भला मेरा क्या बिगड़ता है?" हम लोग तो अब कुछ ही दिनों के मेहमान हैं।"

"मैं एक बात जानना चाहता हूं, सर। क्या आप लोग एक-दूसरे को नापसंद करते थे?" मैंने उनके चेहरे पर आ-जा रहे भावों को देखने के लिए बत्ती जला दी।

"देखो, जब हम युवा होते हैं, तो हमेशा प्रतिद्वंद्वियों की खोज में रहते हैं। वह सोचता था कि वह सर्वश्रेष्ठ अध्यापक है, और मैं सोचता था कि मैं सर्वश्रेष्ठ हूं। कभी-कभी हमारे इसी अहंकार के कारण कई छात्रों को बिना किसी कसूर के सजा मिला करती थी। मैं उसके चहेते छात्रों को कम नम्बर दिया करता था, और वह भी ठीक ऐसा ही करता था। मैंने संभवतया तुम्हारे साथ भी अन्याय किया हो ... ।" वे पुराने दिनों को याद कर रहे थे।

"वह सब भूल जाइए, सर। मैं बिल्कुल ठीक हूं। जिन्दगी मजे में कट रही है।"

"अच्छा सुनो" , एस.एम. ने कहा, "मैं जानता हूं कि तुम कहानियां लिखते हो। मैं तुम्हें टी.एम. के बारे में एक कहानी सुनाता हूं, लेकिन एक शर्त पर। व्यंग्य का इस्तेमाल न करना। अगर तुम उसे उदारता से पेश कर सको तो उसे एक चरित्र के रूप में पेश करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। मैं जानता हूं कि उस कहानी में तुम मुझे भी एक चरित्र की तरह पेश करोगे। लेकिन ठीक है, तुम जैसा चाहो वैसा लिखो। लेखक को अपने ढंग से लिखने से भला कौन रोक सकता है। तुम खुद भी उस कहानी में होगे, मुझे मालूम है। लेकिन अपने को देवदूत की तरह पेश मत करना। यह जानते हुए भी कि तुम टी.एम. के चहेते हो, मैं यह सब तुम्हें बता रहा हूं। (मुझे मालूम है कि तुम उसे देवता नहीं मानते।) लेकिन अगर तुमने कहानी को कहानी की तरह न लिखकर टी.एम. को खुश करने के लिए लिखा तो देवता इसे पसंद नहीं करेगा।" एस.एम. उसी रौ में बहे चले जा रहे थे। अगले 10-15 वर्षों में शायद मैं भी उन जैसा बन जाऊंगा। मेरी त्वचा ही ढीली नहीं पड़ेगी, मेरी जुबान भी ढीली हो जायेगी। उनके परामर्श को लंबा खिंचता देख, मैंने उनसे सहमति जताई।

"करीब पच्चीस साल पहले", एस.एम. ने कहानी शुरू की, "तुम्हारा लम्बा आदमी और यह ठिगना आदमी सागर में एक ही स्कूल में पढ़ाया करते थे। तब तुम्हारा टी.एम. का एक दस वर्षीय बेटा था।" काफी समय तक चुप्पी छायी रही। मैंने उनकी आंखों में देखते हुए पूछा, "फिर ...?"

"मैं इसलिए चुप हो गया क्योंकि तुम हुंकार नहीं भर रहे थे।"

"हूं, फिर क्या हुआ?"

"यह ठिगना आदमी और वह लम्बा आदमी पड़ोसी थे।"

"हूं, फिर?"

"अपने घर में जो भी बातचीत वे किया करते थे, उसकी हल्की सी आवाज मैं अपने घर में बैठकर भी सुन सकता था। इसी तरह हमारे घर की बातचीत को वे लोग भी सुन सकते थे।"

"हूं ..., फिर?" वे फिर से कहना शुरू करें, उससे पहले ही मैंने कहा, "सर, मैं बीच-बीच में 'हूं-हां' नहीं कर सकता। मैं पूरी बात ध्यान से सुन रहा हूं। अगर मैं बार-बार हुंकार भरता हूं, तो मेरा ध्यान हुंकार भरने में ही रहता है।"

"ठीक है," एस.एम. ने कहा और अपनी कहानी जारी रखी। "हां तो, हम एक-दूसरे की बातचीत सुन सकते थे। एक दिन तुम्हारा टी.एम. देर से घर लौटा, और लौटते ही उसकी पत्नी ने बुरी खबर दी, "जानते हैं, क्या हुआ? पता लगा है कि आपका बेटा पड़ोसी की लड़की विशाली के साथ लेटा हुआ था। पड़ोसियों ने खूब गालियां दीं हमें।" यह सुनते ही टी.एम. गुस्से से आग-बबूला हो उठा। उसने यह भी नहीं सुना कि उसकी पत्नी रात का खाना तैयार होने की बात कह रही है। वह बेटे के बिस्तर के पास गया, चद्दर खींचकर एक तरफ फेंकी, और लड़के को बिस्तर से बाहर खींच लिया। बेटे ने अपने बाएं हाथ में दर्द की बात बताई। टी.एम. उसके गाल पर थप्पड़ मारकर चिल्ला उठा, "हरामी, कुत्ते!" "आप मुझे क्यों पीट रहे हैं?" लड़के ने पूछा। "तेरी इतनी हिम्मत! मुझ से पूछता है कि मैं तुझे क्यों पीट रहा हूं। तू उस लड़की विशाली के साथ क्या रहा था?" टी.एम. ने पूछते हुए लड़के को ठोकर मारी। लड़का लड़खड़ाया और हकलाते हुए बोला, "कुछ नहीं डैड। उनके घर में वो चावल की बोरियां हैं न। हम दोनों उन्हीं बोरियों पर लेटे हुए थे और मैं विशाली को एक कहानी सुना रहा था।" "तू कितना बड़ा है? वह लड़की कितनी बड़ी है? पता है तुझे? तू 10 साल का है, और वह लड़की 7 साल की। पुराने दिनों में इस उम्र में शादी हो जाया करती थी।" टी.एम. ने अपने बेटे से उस बेंच पर बैठने को कहा, जो उसने छात्रों के लिए रखा था। "आइये, खाना खा लीजिए", उसकी पत्नी ने पुकारा। "तुम जाकर सो जाओ", उसने अपनी पत्नी से कहा, "मैं बाद में खा लूंगा। तुमने इसे बिगाड़ कर रख दिया है। और हां, सोने से पहले, वह ब्लैकबोर्ड यहां रख देना।" टी.एम. की पत्नी ने आदेश का पालन किया और जाकर बिस्तर पर सो गयी। तुम्हारा टी.एम. अपने बेटे की ओर घूरते हुए चीखा, "नालायक, गधा। अगर तुझे नींद आयी तो उड़ा दूंगा रखके ठोकरों से। आज के बाद अगर तू किसी लड़की के साथ उस तरह सोया तो खाल उधेड़ दूंगा तेरी। समझा?" लड़का चुप रहा। "समझा तू?" टी.एम. चिल्लाया। "जी, हां।" लड़के ने कहा। तब तुम्हारे टी.एम. ने शरीर रचना-विज्ञान का एक चार्ट ब्लैक बोर्ड पर फैलाया और अपने बेटे से पूछा, "तू जानता है कि यह क्या है?" लड़के ने जवाब दिया, "आदमी और औरत।" लड़का और व्याख्या करते हुए शरमा गया। 'यह क्या पूछ रहे हैं

आप लड़के से।'' टी.एम. की पत्नी ने टिप्पणी की। ''तुम बको मत।'' चिढ़ा हुआ पति चिल्ला उठा।

''सर'', मैंने एस.एम. से कहा, ''क्या उन्हें इतनी भी अक्ल नहीं थी कि हम व्यस्क लोगों की तरह छोटे लड़के सेक्स का वह मतलब नहीं समझते?'' मैं एस.एम. की ओर देखने लगा। उनकी गंजी खोपड़ी कमरे के प्रकाश को परावर्तित कर रही थी। ''नहीं महोदय, नहीं।'' उन्होंने कहा। ''तुम्हारा टी.एम. अत्यंत गंभीर व्यक्ति है। पूर्ण रूप से सदाचारी। वह अपनी पत्नी के अतिरिक्त किसी और स्त्री की ओर देखने की सोच भी नहीं सकता था। दरअसल पड़ोसियों को बात का बतंगड़ नहीं बनाना चाहिए था। वे लोग भी कहानी के पात्रों की तरह हैं। मैं अभी उनके बारे में बात नहीं करूंगा ... । खैर ... और तब तुम्हारा लम्बा आदमी अपने बेटे की तरफ मुड़ा और ऋग्वेद का पाठ करने लगा। फिर सृष्टि के प्रारंभ को समझाने के लिए डार्बिन के क्रमविकास सिद्धांत को याद करते हुए बोला ''जीवन का प्रारंभ एककोशिकीय जीवों के रूप में पानी में हुआ।'' तब वह अपने बेटे पर चिल्लाया, ''समझा तू?'' बेटे ने कहा, ''जी।'' ''तुझे नन्हीं लड़कियों के साथ वासना-पूर्ति नहीं करनी चाहिए।'' टी.एम. ने अपने बेटे से कहा, ''मुझ से पूछ क्यों?'' इस पर उसकी पत्नी ने टोका, ''बच्चों को इस सब के बारे में क्या मालूम?'' तुम्हारा टी.एम. भड़क उठा, ''अगर तुम बीच में बोली तो दूंगा एक लात तुम्हें भी।'' उसने अपनी पत्नी से कहा। तब वह बेटे की तरफ मुड़ा और अपने प्रश्न का खुद ही उत्तर दिया, ''क्योंकि विधाता का यही विधान है।'' वह फिर बोला, ''आरंभ में आदम और हौवा अदनवाटिका में नंगे छोटे बच्चे थे।'' बेटे के मन में कुतूहल जगा, ''यह अदनवाटिका कहां है?'' उसने पूछा। क्योंकि टी.एम. को ऐसे प्रश्न की आशा नहीं थी, इसलिए वह क्षण भर के लिए चुप रहा, और तब अपने सिर के बाल उखाड़ते हुए चिल्ला उठा, ''यह पृथ्वी ही अदनवाटिका थी।'' तब उसने हौवा को ज्ञान के वृक्ष का फल खिलाने के लिए सर्प के रूप में सैटन के नीचे आने की कहानी सुनाई। उसी समय टी.एम. की पत्नी कह उठी, ''मेहरबानी करके अब बच्चे को सोने दीजिए। आप यह कहानी कल सुना सकते हैं।'' टी.एम. ने ऊंची आवाज में पूछा, ''कहानी मालूम है तुम्हें?'' पत्नी ने उससे पूछा, ''क्रिश्चियन दंतकथा और हमारे पुराणों के बीच क्या संबंध है?'' ''खैर'', टी.एम. ने कहा, ''हमें उनके पुराणों को भी जानना चाहिए। हमारा विश्वास उनके विश्वास से अलग है।'' तब वह अपने बेटे की तरफ मुड़ा तो देखा कि वह ऊंघने लगा है। टी.एम. गुस्से में जैसे पागल हो उठा। उसने बेटे को कंधों से पकड़कर झकझोर दिया। ''चार्ट पर देख।'' उसने कहा। तब उसने रचना के प्रारंभ के बारे में बताया। फिर शरीर के हर अंग की ओर संकेत करते हुए उनके कार्यों के बारे में बताया। नन्हें बालक ने रचना के रहस्यों के बारे में सुना। ''अगर फिर किसी लड़की के साथ गया तो तेरी टांगें

तोड़कर रख दूंगा।" टी.एम. ने चेतावनी दी। नन्हा लड़का अपनी अधखुली आंखों के साथ जगे रहने के लिए संघर्ष कर रहा था। टी.एम. ने उसे थप्पड़ मारा, और उससे कहा कि जाकर सो जाये। उसे क्रोध आ रहा था कि उसने नींद में ऊंघते बेटे के लिए इतना समय नष्ट कर डाला।

रात के दस बज चुके थे। उस तरफ से प्लेटों और चम्मचों की आवाज नहीं आ रही थी, अतः मैंने अंदाजा लगा लिया कि टी.एम. सोने लगा है। अगले तीन-चार दिन मैंने उस नन्हें लड़के को नहीं देखा। शायद वह सूजे हुए गालों के साथ बुखार में तप रहा होगा। आज भी जब उस बारे में सोचता हूं तो उदास हो जाता हूं। तुम्हारे टी.एम. ने उस तरह का व्यवहार जीवन के उन मूल्यों के लिए किया जो उसके व्यक्तित्व का एक हिस्सा बन गये थे। हर एक इन्सान का व्यवहार उसके विश्वास पर निर्भर करता है। "अगर तुम्हारे जीवविज्ञान के अध्यापक को जीवविज्ञान का असली ज्ञान होता तो लड़के को सजा न मिलती। तुम क्या कहते हो?" एस.एम. ने पूछा।

"बाद में, उनके बेटे का क्या हुआ?" मैंने पूछा।

"उसने न अपने बेटे को समझा, न पत्नी को, और न जिन्दगी को।" एस.एम. का यह निष्कर्ष था।

"सर, मैं सचमुच जानना चाहता हूं कि आखिर उस लड़के का क्या हुआ?" "देखो, अगर तुम्हारा टी.एम. खुद को पहचान पाता, तो दूसरों को भी जान सकता था। तुम्हारे लम्बे आदमी का बेटा, लगता है कि घर से भाग गया था।"

"मुझे टी.एम. के लिए बहुत दुख हो रहा है। बेटे का घर से भागना उनके लिए एक दुखदायी घटना रही होगी।" मैंने कहा।

"नहीं, लम्बे आदमी को कुछ भी नहीं हुआ। वह चट्टान की तरह मजबूत है। सिर्फ उसके बाल ही सफेद हुए हैं। वैसे, उम्र तो उसकी भी मेरी ही तरह बढ़ी है। लड़का घर से इसलिए भागा क्योंकि उसे अपने पिता से शिक्षा की जगह पिटाई मिली। उस लड़के के अलावा तुम्हारे टी.एम. के तीन और बच्चे हुए। वे सब विवाहित हैं और मजे से जिन्दगी गुजार रहे हैं। जिन्दगी रूकती नहीं, समझे। शरीर तभी तक काम करता है, जब तक वह काम कर सके। हमें केवल अपने मस्तिष्क को परिष्कृत करने की जरूरत है।" एस.एम. ने कहा।

"सर, मुझे अपने लम्बे आदमी के लिए दुख है। घर से भाग गये लड़के के लिए भी मुझे अफसोस है।"

"नहीं, तुम्हें लड़के के लिए अफसोस करने की जरूरत नहीं। सुनो, मेरा एक पड़ोसी है—विधान सभा में सचिव के पद पर है। उसका बेटा अभी चौदह वर्ष का भी नहीं था। वह हमारे एक दूसरे पड़ोसी की बेटी के साथ घर से भाग गया था। बाद में उन्हें एक दूर-दराज के शहर में खोज लिया गया था। दोनों परिवारों ने समझौता कर लिया। यह कोई

बड़ा मसला नहीं है। अच्छा ठीक है, मैं चलता हूं अब।" एस.एम. जाने के लिए उठ खड़े हुए।

जब तक एस.एम. यहां थे, मैं उन दोनों के बारे में ही सोचता चला गया था। लेकिन जब से एस.एम. गये, लड़के के सामने खुला रखा शरीर रचना-विज्ञान का चार्ट मेरे मन को कचोट रहा है। एस.एम. का उस सब को पेश करने के ढंग में विशेष अर्थ था, और वे मुझे रहस्यमय व्यक्ति लगे थे। क्या एस.एम. व्यंग्यात्मक थे? क्या वे अपनी ईर्ष्या को छुपाने की कोशिश कर रहे थे? क्या वे टी.एम. की असफलता का मजा ले रहे थे। क्या एस.एम. उम्र बढ़ने के साथ परिपक्व नहीं हुए? क्या वे सचमुच तटस्थ और सहानुभूतिपूर्ण थे? क्या मैं इस कहानी में कुछ ज्यादा अर्थ ढूंढ रहा हूं? मुझे नहीं मालूम। □

अनुवादक : पृथ्वीराज मोंगा

शस्य का पता

क्षमा शर्मा

क्नाट प्लेस की खातिर क्नाट प्लेस के पेड़ों को काटा जा रहा है। पिछले पांच-छह साल में दिल्ली को ग्लोबल बनाने के तहत सड़कें चौड़ी करने के लिए हजारों पेड़ काट दिए गए। इन पेड़ों पर तोतों का घर था। पेड़ कटने से हजारों बेघर हो गए। पर्यावरण पर बढ़ते इन खतरों ने क्षमा शर्मा को उपन्यास लिखने के लिए बाध्य किया। प्रस्तुत है उनके द्वारा लिखे जा रहे उपन्यास का एक अंश।

बस में बैठकर तरह-तरह के ख्याल आते हैं। निजामुद्दीन पुल को नोएडा से जोड़ने वाली सड़क चौड़ी हो रही है। पुश्ते को उधेड़ा जा रहा है। वह पत्थर भी उखड़ चुका है जिस पर लिखा था दिल्ली नौ किलोमीटर। एक जमाने में यह इलाका दिल्ली में नहीं आता होगा। दिल्ली सुरसा की तरह मुंह फैला रही है ... गड़प ... गड़प केंद्रीयतावादी राजनीति का राजचिह्न ... काले खां के पास सैंकड़ों साल पुरानी पोखर को भर दिया गया है ... उस पर स्मृति वन लगाया गया है। आइए पैसे दीजिए और अपने किसी परिजन की याद में पेड़ लगाइए ... एक प्रायोजित स्मृति ने प्राकृतिक स्मृति को खत्म कर दिया।

जानी तोता देख रहा था :

उस दिन टेलीविजन पर बताया जा रहा था, कोयले के बिजलीघर से जो राख बचती है उससे बढ़िया किस्म की ईंटें बनाई जा सकती हैं। वे सस्ती होती हैं। तब क्या उन सबको घर मिल सकते हैं। गांव में एक जमाने में ऐसे घर बनते थे जब कोई भी चीज बाजार से नहीं लानी पड़ती थी। चिकनी मिट्टी की दीवारें, पेड़ के तनों की छतें, गोबर, पीली मिट्टी

की लिपाई ... उद्योग ने सपने दिखाए थे, सबको सब चीज मिलेगी, उत्पादन बढ़ेगा, चीजे सस्ती होंगी। पर जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ा, चीजें महंगी हुईं, लोग पामाल हुए। गांव की पूरी अर्थव्यवस्था जो एक जमाने में आत्मनिर्भर हुआ करती थी, शहर पर बुरी तरह आश्रित हो गई। शहरों का पेट बड़ा होता गया, गांव सिकुड़ते गए। आश्रित कभी तरक्की नहीं करते मालिकों का पेट कभी भरे तो तरक्की हो।

यमुना पर आई.टी.ओ. के पुल को चौड़ाया जा रहा है। कुएं बनाकर लोहे की बाड़ लगाई जा रही है। ताजमहल की मरम्मत करने वालों को पता चला कि पूरा ताजमहल कुओं पर टिका है। ताजमहल के कुएं भारत ने खोदे। आज बीसवीं सदी के अंत में यमुन के कुएं विदेश से आयातित तकनीक खोद रही है। तकनीक सबके लिए होनी चाहिए थी, वह साधनसम्पन्न की गुलाम बन गई। सूचना पर सबका अधिकार है वह उपग्रह में कैद होकर रह गई। उपग्रह जिसका सूचना उसकी। विश्व के एक हो जाने का नारा मगर गरीबों को हमेशा खैरात के टुकड़े ही मिलेंगे। नया-नया साइंस पढ़ने वाला लड़का समझता है आगे चलकर वह वैज्ञानिक बनेगा ... वह भूल जाता है खोज कोई करता है ... लाभ कोई कमाता है। दवाइयां कोई खोजता है, मल्टीनेशनल अपना घर भरते हैं। नई मशीनें कोई बनाता है, फैक्ट्री किसी और की लगती है, अणुबम बनाया किसने, डाला किसने।

हम एक उपयोगितावादी दुनिया में जीवित हैं। उपयोगिता खत्म, जीवन खत्म। बूढ़ों की दुर्दशा देखकर इस उपयोगितावादी दर्शन को अच्छी तरह से पहचाना जा सकता है। लाख कहें कि भारतवर्ष भौतिकता से हमेशा दूर रहा है और रहेगा। मगर सच्चाई तो यह है कि पुनर्जन्म का पूरा दर्शन भौतिकता का दर्शन है। वहां अच्छे कर्म करो स्वर्ग पाओ। इस जन्म में दान दो अगले जन्म में धन पाओ। यहां तक कि ईश्वर को भी पैसे से वश में करना है। बड़े-बड़े मंदिरों और तीर्थों में जो पंडा-पुरोहितों के कर्म हैं उनको देखकर विश्वास करना पड़ता है कि हां, ईश्वर भी पैसे वालों के वश में हो सकता है। वह उनके सुलाए सोता है और उनके जगाए जगता है।

सारे दर्शन सत्ता के नाम पर एक हो जाते हैं। सभी दलों और सत्ताओं का एक ही तर्क है—'हम सही हैं। हमें हमेशा सही मानो। हम से असहमति यानी कि देशद्रोह राष्ट्रद्रोह, गद्दारी, धर्म के दुश्मन, पंथ के दुश्मन, कौम के दुश्मन, समाजवाद के दुश्मन, स्त्रियों के दुश्मन, प्राणियों के दुश्मन, कुर्सी मिलते ही दुश्मनों का अंत नहीं रहता। हर चीज डराती है। खौफनाक। सौदेबाजी शुरु होते ही रिश्तों के अर्थ खत्म हो जाते हैं। उनके अंत की शुरुआत होती है।

'तुम पुलिस की गोली से मरे।'

'तुम भूख से, तुम युद्ध के मैदान में शहीद हुए, तुम आपसी रंजिश में—तुम बलात्कार में खत्म हुईं ... तुम जलकर ... तुम सड़क दुर्घटना में ...

तुम्हें नाम कोई भी दे दिया गया लेकिन थे तो मेरे ही बांधव। हे बंधु, तुम जिस तरह भी मरे तुम भूल गए कि तुम लालची कुत्तों की गिरफ्त में हो। जो भूख लगने पर तुम्हें ही फाड़कर खा जाएंगे, टुकड़े-टुकड़े कर देंगे। तुम हर तरह के अन्याय का शिकार करने निकले थे—शिकार बनकर खत्म हुए ... तुम कुर्सी की दौड़ में मोहरे बने और कुर्सियों ने तुम्हारे लिए कभी कोई आंसू नहीं बहाए।

तुम एक अनाम जीवन की तरह खत्म हुए। क्या हुआ जो साल में एक बार तुम्हारा नाम का एक दीपक जला दिया गया। तुम थे। लाखों-करोड़ों दीपक था सिर्फ एक ... तुम्हीं बताओ, जिन कारणों से तुम मरे थे, तुम्हारे हिस्से क्या आया? एक धूल का कण भी नहीं। यह दर्शन पहले मनुष्य को मोक्ष का सपना दिया, अपने भौतिक साधनों से उसे खत्म करता है और फिर धूल में बदल देता है ... इस प्रक्रिया में हम हमेशा फंसते हैं और खत्म होते हैं।

डाइनोसोर खत्म हुए, डोडो खत्म हुई, हवेलें जैसे-तैसे बचा ली गईं, मगर मैमथ न बच सके। बेशक बर्फ में दबे किसी मैमथ के पेट में आज भी करोड़ों वर्ष पहले का ताजा-सा दिखने वाला फूल मिले ... मगर वे हैं कहां?

मनुष्य भी क्या इन सत्ता के दलालों द्वारा ऐसे बना दिए जाएंगे। यदि इस दुनिया में मनुष्य न रहें तो पैसे, सोने, चांदी, हीरे-जवाहरातों का क्या होगा? पशु-पक्षी तो इनका इस्तेमाल जानते नहीं। जब तक नहीं जानते, तभी तक ठीक है ... नहीं तो वे भी मनुष्यों की तरह हो जाते एक-दूसरे के खून के प्यासे!

अमरीका में बच्चों के बहुत-से ऐसे ग्रुप बनाए गए हैं जो पर्यावरण को बचाना चाहते हैं।

वे डारफिनों की मदद करना चाहते हैं। प्लास्टिक की हर चीज से नफरत करते हैं। रिसाइक्लिंग पर जोर देते हैं। मगर हमारे यहां बाजार प्लास्टिक से भरे पड़े हैं। जो भी अच्छा है वह प्लास्टिक से जुड़ा है।

हर चीज कागजों के लिफाफों से फिसलकर प्लास्टिक बैग्स तक पहुंच चुकी है। लकड़ी-मिट्टी के उद्योग प्लास्टिक उद्योग में बदल गए हैं। बड़े उद्योग में छोटी पूंजी और उनसे जुड़े उद्योग समाते जा रहे हैं।

यहां बदलाव का अर्थ है अपने पक्ष में शक्ति का संचयन और संतुलन। जिस भी दल की सत्ता चली जाती है वह एक नए उग्रवादी नारे और नए दल के साथ आ खड़ा होता है। मुख्यधारा में जुड़ना और उससे बाहर चले जाना एक धमकी की तरह उभरता है। मनुष्यों की देखादेखी यदि जानवर भी ऐसी ही भाषा बोलने लगें तो अचरज क्या!

जानी को आश्चर्य है कि चीलों को कैसे पता चला कि वह वहां नीम के पेड़ पर छिपा बैठा है।

झुटपुटा होने पर वह चारों ओर देखता है। कोई उस पर नजर तो नहीं रखे है। फिर धीरे से उड़कर नीम से पीपल के पेड़ पर जा बैठता है। पीपल से उड़कर वह फिर दूसरे

नीम पर जाता है और लम्बी उड़ान पर चल देता है।

शाम के बाद रात हो गई है। जंगल की सीमा में पहुंचकर जानी इधर-उधर देखता है।

तभी उसे आवाज सुनाई देती है—"आओ जानी।"

दो जलती नजरों वाली चीलें उसके सामने आ जाती हैं। अंधेरे में उनकी आंखें ही चमकती हैं।

"कहां चलना है।" जानी पूछता है।

"आओ।" कहते-कहते चीलें उड़ती हैं। वे अंदर घने जंगल में एक बरगद के पेड़ पर पहुंचती हैं। बरगद की बड़ी-बड़ी जटाएं जमीन के अंदर घुस गई हैं। घोर अंधेरा है। जानी को डर लगता है। वह शहर का वाशिंदा है। इतने घने जंगल में पहली बार आया है।

सभी पक्षी सो चुके हैं। सिर्फ चीलें जग रही हैं।

जानी पेड़ की डाल पर बैठ जाता है। उसके सामने बहुत-सी चीलें बैठी हैं। बहुत देर हो गई है। भूख से जानी की अंतड़िया कुलबुला रही हैं। मगर यहां तो किसी ने पानी के लिए भी नहीं पूछा।

जानी पैड़ बदलता है। फिर पूछता है—"आपने मुझे क्यों बुलाया?"

"बैठो बचुआ जल्दी क्या है। जवान हो इतनी जल्दी थक गए।" एक पतला-दुबला चील कहता है।

"थकने की बात नहीं। भूख बहुत तेज लगी है।"

"बोलो क्या है? किसका मांस खाओगे?"

"मांस! क्या तोतों को कभी मांस खाते देखा है।"

"अरे भाई जैसी संगत वैसा खान-पान। अब चीलों की संगत में आए हो तो मांस खाना भी सीख जाओगे।" सारी चीलें हंसती हैं।

"मजाक छोड़िए खाना न हो तो पानी ही पिलवा दीजिए।" जानी लगभग गिड़गिड़ाता है। प्यास से उसका गला सूखा जा रहा है।

"अरे तुम घबराते क्यों हो। अभी पानी आ जाता है। लगता है अभी पुलिसिया अत्याचार से नहीं गुजरे हो। वे तो चौबीस-चौबीस घंटे पानी नहीं देते।"

तभी दो चीलें बरगद के पत्ते में पानी भरकर लाती हैं। जानी पीता है तो कुछ राहत मिलती है।

"हां तो तुमने ऊंट के लिए दो करोड़ मांगे हैं।" वह चील फिर कहता है।

"इनको कैसे पता?" जानी सोच में डूब जाता है।

"पक्षियों को बदनाम ही करना था तो दो करोड़ क्यों अरब क्यों नहीं। सारे पक्षियों को कानफीडेंस में लेते फिर देखते। हम सरकार की पूरी मशीनरी जाम कर देते। हवाई अड्डों पर जमा हो जाते और एक जहाज नहीं उड़ने देते। लेकिन लगता है तुम तो सारी

रकम खुद ही डकार जाना चाहते हो। और तुम्हें यह भी पता होगा कि तुम्हारे खिलाफ सारे काले पक्षियों ने मोर्चाबंदी कर रखी है।''

जानी चुप, क्या कहे। क्या ये चीलें पक्षियों की जासूसी कर रही हैं। कौन हैं ये। कहीं विदेशी एजेंट तो नहीं जो डबलक्रास कर रही हों।

''तो बताओ उस दो करोड़ में से हमें क्या मिलेगा?''

''दो करोड़ कहां हैं? निकम्मी सरकार ने तो इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। मुझे तो लगता है सरकार एक कानी कौड़ी भी नहीं देगी। बल्कि हमारे जो भाई-बंधु पिंजरों में बंद हैं उन्हें भी देशद्रोह के आरोप में थानों में बंद कर रही है।''

''मगर जहां तक हमें पता है, सरकार ने तो उन सबको आजाद कर दिया और अपनी क्रेडिबिलिटी बढ़ा ली। जो आजाद हुए वे तुम्हारी हां में हां मिलाएंगे असम्भव।'' चील ने फिर कहा।

''तो फिर आप क्या सुझाते हैं!'' जानी ने पूछा।

''सुझाना क्या? दरअसल तुमने बिना किसी तैयारी के ऐसा कदम उठा लिया। अब तो ऐसा हो सकता है कि तुम ऊंट को हमारे हवाले कर दो।''

''फिर?''

''फिर क्या, देखेंगे क्या किया जा सकता है। जो कुछ मिलेगा उसमें से दस प्रतिशत तुम्हारा।''

''इसीलिए तो, उन चीलों पर जरा भी शक नहीं जाएगा। हम अपना काम कर गुजरेंगे।''

''लेकिन आप क्या करेंगे?''

''यह तो वक्त ही बताएगा। तुम चाहो तो हमारे साथ रह सकते हो। तुम्हें किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होगी। शहर में तो तुम्हारी जान भी जाने का खतरा है। यहां किसी को पता नहीं चलेगा।''

''ठीक है, बहुत रात हो गई है। सुबह सोचकर बताऊंगा।''

''सुबह का कोई चक्कर नहीं। डील इज ए डील। अभी फैसला हो जाना चाहिए।''

जानी को लगा एक मुसीबत से निकला तो दूसरी में आ फंसा। वहां रहता तो जान जा सकती थी, यहां भी क्या भरोसा।

''यदि मैं आपके साथ समझौता कर लूं तो अपने लोगों को क्या मुंह दिखाऊंगा।''

''अच्छा ... अच्छा यानी कि अभी भी तुम्हारे अंदर आदर्शवाद हिलोरें ले रहा है और आदर्शवादियों की हालत यह हो गई है कि वे फिरौती मांगते फिर रहे हैं।''

मैं फिर कह रहा हूं कि एक नाव में पैर रखो। और वैसे भी अगर तुम चाहो भी कि इस रास्ते को छोड़ दो तो कोई तुम्हें छोड़ने नहीं देगा। पहले तो हम ही तुम्हें यहां से जाने नहीं देंगे।'' चील ने हंसते हुए मगर धमकी के स्वर में कहा।

यानी कि सही शब्दों में कहा जाए तो चीलों ने जानी का अपहरण कर लिया और वह खुद अपने पंखों से चलकर अपहरण करवाने आया। यदि वह उनकी बात मान भी ले तो क्या भरोसा कि वे उसे वहां से जीवित निकल जाने देंगे।

"चलिए यह बात तो निबटा लेंगे। यह बताइए कि आपको कैसे पता चला कि मैं उसी नीम के पेड़ पर छिपा बैठा हूं।" जानी ने बात बदली।

"हम कहते थे न बचुआ कि अभी तुम इस खेल में नए हो। अनाड़ी हो। बचपन में ही रिस्क ले बैठे हो।"

"मगर आप बताइए तो सही।"

"अब बार-बार पूछते हो तो बताए ही देते हैं। थाने का सारा नाटक हमारे कहने पर ही हुआ था। थानेदार ने ही हमें मैसेज भिजवाया था कि तुम वहां छिपे बैठे हो। तुम उनसे छिप सकते थे। हमसे नहीं।"

जानी को भरी रात में सूरज दिखाई देने लगा। उसका सिर चकराने लगा। वह बेहोश होने को हुआ। उसका गला दोबारा सूखने लगा। वह परेशान हो उठा।

तो क्या उसे चीलों की बात मान-लेनी चाहिए। या सरकार से समझौता कर लेना चाहिए या हमेशा के लिए यहां से चले जाना चाहिए।

यदि वह आज चीलों की बात मान भी ले तो क्या भरोसा कि कोई और गिरोह नहीं टकराएगा। यदि चीलों की बात नहीं मानता तो हो सकता है पुलिस ही उसे मार दे। पैसा कोई और ले, नाम उसका लगे। कुछ समझ में नहीं आता क्या करे। फिलहाल तो बचने का यही तरीका है कि वह चीलों की बात मान ले। यहां से चला जाए। आखिर यदि दो करोड़ मिल भी जाएं तो क्या संगमरमर का महल बना लेता या सोने का पिंजरा। रहने को तो वही चाहिए एक पेड़। लेकिन यदि कल पेड़ भी पक्षियों की तरह विद्रोह कर दें। सारे पक्षियों से कह दिया जाए कि अब वे अपना ठिकाना कहीं और तलाश करें। पेड़ उन्हें जगह देने में असमर्थ हैं। पक्षियों के रहने से कोई पेड़ों को कम तकलीफ तो नहीं होती। मुफ्त में फल-फूल खाते हैं, डालियों पर उछलते-कूदते हैं और सुबह-शाम शोर से जीना मुश्किल कर देते हैं।

लेकिन कहां जाएगा जानी। तोतों की इच्छाएं जितनी बढ़ गई हैं, यदि वे पूरी नहीं हुईं तो क्या वे उसे जिंदा रहने देंगे। बल्कि अभी बहुत-से तोते होंगे जो उसकी जगह लेना चाहते होंगे। मुफ्त की रकम और पब्लिसिटी किसे बुरी लगती है?

एक ऐसा जाल जिसमें फंसने के लिए वह खुद-ब-खुद चला आया। उसने सोचा तक नहीं कि यह उसे फंसाने की कोई चाल हो सकती है। पर कोई पक्षी ऐसा कर सकता है, इसका भरोसा तो क्या कल्पना तक नहीं थी उसे। वह तो सोचता था कि पक्षियों के

इतिहास में वह ही पहला है जिसने मनुष्यों को मात दी है। पूरी तोता जाति और पक्षी समाज का गौरव बढ़ाया है।

यूं पुलिस पर तो उसे कभी भरोसा नहीं रहा। लेकिन पुलिस ऐसा कर सकती है—कहीं ऐसा तो नहीं कि पुलिस ने चीलों को भी मूर्ख बनाया हो और वह पक्षियों को आपस में लड़ा कर अपना उल्लू सीधा करना चाहती हो। जानी को सोच-विचार में देख चीलें बहुत खुश हो रही थीं। उन्हें पता है कि इन हालातों में जानी कितना सोचेगा, उनकी बातें मानेगा। परिस्थिति ऐसी है कि इधर कुआं तो उधर खाई।

"ठीक है मुझे आपकी बात मंजूर है।"

जानी की बात सुनकर सारी चीलें शोर मचाने लगीं—हो हिप-हिप-हुर्रे ... चियर्स ... चीलों का शोर इतना ज्याद है कि बाकी पक्षी आधी रात में डर-डरकर उड़ने लगती है। जानी चुप है। मजबूरी जो न कराए व थोड़ा है।

"तो जानी भाई, अब करार भी हो जाए।" चील कहता है।

"ठीक है।"

"पहली बात तो यह है कि इसी क्षण से ऊंट की सुरक्षा का भार हमारा है। आप अपने तोता सैनिकों को हटा लें।"

"जी!" जानी मिमियाता है।

"दूसरी बात यह कि आप कभी किसी सरकारी प्रतिनिधि से अकेले नहीं मिलेंगे। न ही बात करेंगे। पैसों का कोई भी लेन-देन हमारे बिना नहीं होगा। यह भी कि हम एक-दूसरे से चालाकी नहीं बरतेंगे। चालाकी दोस्ती की दुश्मन है। और अब आप हमारे दोस्त हैं। हमारे आदमी लगातार आपके सम्पर्क में रहेंगे।"

"जी।"

"और सबसे अंतिम बात ... शायद आपको अच्छी न लगे हमें बिना बताए आप कहीं जाएंगे नहीं। दरअसल मामला इतना नाजुक है कि एक पक्षी की अनुपस्थिति भी आफत ला सकती है। चूंकि मीडिया के द्वारा यह बात बहुत फैल चुकी है तो यह भी हो सकता है कि कोई आपकी हत्या कर दे या अपहरण कर लेना चाहता हो।"

"हे भगवान ये चीलें हैं या अंतर्यामी जो बातें जानी सोच रहा था, वे इनके पास कैसे पहुंच गई। कहीं इनके पास ई.एस.पी. तो नहीं, अतींद्रिय शक्तियां ... एक तरीके से दोस्त कहकर मुझे गुलाम बनाया जा रहा है। इतनी सारी बंदिशें सिर्फ दस प्रतिशत के लिए।

"मैं भी आपसे एक बात कहना चाहता हूं।"

"कहो।"

"मुझे लगता है दस प्रतिशत लेकर भी मैं क्या करूंगा। आप सारा कुछ रखें और मुझे अपनी शर्तों से मुक्त करें।"

"यह भी हो सकता है। मगर तब फिर ऐसा करना होगा कि जब तक बात सुलझ न जाए तब तक आप यहीं हमारे मेहमान बनकर रहें।"

× × ×

आज क्या जानी के नक्षत्र खराब हैं। जो बात कह रहा है उल्टी पड़ रही है। चील कितने कूल और केलकुलेटेड हैं। जानी बहुत बोलता है। मन की बात मन में नहीं रख सकता इसीलिए दूसरे लाभ उठा ले जाते हैं।

जानी जो बातें अब सोच रहा है पहले क्यों नहीं सोच सका। हो सकता है उसने सरकार से दो-चार लाख मांगे होते और सरकार मान गई होती। इस वक्त तो हालत यह है कि सभी उससे नाराज हैं। तोतिस्तान की बात कुछ आगे बढ़ती तो कुछ तोते खुश हो जाते। उन्हें शक्ति, पद, प्रतिष्ठा, जमीन नजर आती। अधिकार पाने का गौरव मिलता अलग से। मगर फिलहाल तो दो करोड़ में ऐसी बात फंसी है कि चीलें तक उस पर दांत मारने आ पहुंचीं। अभी और कौन-कौन आएगा, क्या पता? □

ग्रहण कहां-कहां लगा

भारतेंदु

भारतेंदु हिंदी साहित्य के युग पुरुष थे। उनके प्रहसनों ने हिंदी व्यंग्य साहित्य का आरंभ किया है। 'कवि वचन सुधा' में उनके वैचारिक आलेखों ने चिंतन बिंदु प्रदान किए हैं। भारतेंदु जी को प्रणाम करते हुए 'कवि वचन सुधा' पत्रिका के 12 अक्तूबर, 1874 के अंक में 'ग्रहण' लगने पर उनकी व्यंग्यात्मक टिप्पणी दर्शनीय है। गगनाञ्चल के पाठकों के लिए 'गिरीश चन्द्र चौधरी ने इसे विशेष रूप से प्रस्तुत की है।

ग्रहण सूर्य में लगा, काशी में लगा। हजारों परदेसी आये, गंगाजी में लगा। काले-काले लाखों आदमी हलहल के नहाए, चुंगी पर लगा। सफ़ाई में बट्टा लगा प्रबन्ध विशेष करना पड़ा। हिन्दुओं पर लगा। बारह पहर भूखों मरे मंदिरों में लगा, असबाब नया बदलना पड़ा। पत्रे वालों पर लगा, अशुद्ध काल छापा। जिनके घर मेहमान आये उसको लगा। जिनकी चोरी हुई उन पर लगा। जो धक्कों में पिस गए उनको लगा। ग्रहण का अर्थ है लेना—भक्तों ने भगवन्नाम लिया, डोम चमारों ने भीख लिया। घाटियों ने पैसा लिया। गंगापुत्रों ने बिदाई ली, दलालों ने दलाली, दुकानदारों ने नफा, चाँइयों ने लूट खसोट लिया, पुलिस ने पकड़ कर इनाम लिया, कचहरी ने जुर्माना लिया। लोग नहाने गए, आनन्दियों ने आनंद लिया। रेलवालों ने भाड़ा लिया, ठेकेदारों ने पैसा लिया, सिद्धान्त यह कि ग्रहण अच्छा हुआ। □

खल्वाट-कथा

रवीन्द्रनाथ त्यागी

हिंदी व्यंग्य के आधार स्तम्भों में से एक रवीन्द्रनाथ त्यागी की बात कहने की अपनी अलग शैली है। जो आनन्द एक क्लासिक रचना को पढ़कर मिलता है वैसा ही आनंद रवीन्द्रनाथ त्यागी की रचनाओं को पढ़कर भी मिलता है। देश-विदेश की महत्वपूर्ण कृतियों के उद्धरण के बाद उद्धरण इनकी रचनाओं में स्वतः प्रस्फुटित होते रहते हैं। अट्टहास शिखर सम्मान, चक्कल्लस, पदुमलालपुन्नालाल बख्शी आदि सम्मानों से सम्मानित त्यागी जी की ताजा रचना प्रस्तुत है।

इस असार संसार में 'धन' नाम की जो वस्तु है वह सबसे अधिक शक्तिशाली है। तेंतीस करोड़ देवी-देवताओं में 'धन' नामक देवता ही सब से ज्यादा प्रबल है। बाम-मार्ग के पांच 'मकारों' में 'मुद्रा' नामक 'मकार' ही सबसे अधिक आनन्ददायक होता है क्योंकि उसकी सहायता से आप शेष चार 'मकार' प्राप्त कर सकते हैं। खाखी संप्रदाय का मूल मंत्र मात्र यही था कि 'बिन टका टकटकायते'। लार्ड कार्नवालिस ने जब सिक्के ढालने की 'कल' लगाई तो अकलमंद लोग धन को 'कलदार' कहने लगे और किसी परम-वैष्णव-भक्त ने उसकी प्रशंसा में एक स्त्रोत्र गढ़ा जिसकी सर्वप्रमुख पंक्ति थी—भज कलदारं, भज कलदारं, कलदारं भज, मूढ़मते। सामरसेट माम ने कहा है कि धन वह छठी ज्ञानेन्द्रिय है जिसके बिना शेष पांच ज्ञानेन्द्रियां काम नहीं करतीं। ये जितने तथाकथित आध्यात्मिक लोग हैं जो कहते हैं कि धन का सुख से कोई संबंध नहीं है, ये वे विरक्त लोग हैं जिनके बैंक में अपने करोड़ों रुपये जमा हैं। धन की महत्ता मात्र इसी सत्य से प्रकट हो जाती है कि धनाड्य

व्यक्ति के सामने सारे लोग अपने आप उसकी दासता स्वीकार कर लेते हैं। कवि कहता है :

त्वद् भृत्य भृत्य परिचारक भृत्य भृत्य
भृत्यस्य भृत्य इति मा स्मर लोकनाथ

हमारे नीतिकारों के अनुसार धनी बनने के तीन उपाय हैं। पहिला उपाय है धन अर्जित करना, दूसरा उपाय है धन संचय करना और तीसरा और सबसे बड़ा उपाय है भाग्यशाली होना। एक और महामति शास्त्रकार के अनुसार धन प्राप्त करने का कोई निश्चित नियम नहीं है क्योंकि जिस लक्ष्मी-देवी का वाहन स्वयं उल्लू है, उसका भला क्या नियम हो सकता है? रहीम के अनुसार—कमला थिर न रहीम कहि यह जानत कब कोय, पुरुष पुरातन की वधू क्यों न चंचला होय? पता नहीं कि लक्ष्मी के पुरातन पति ने केसरी जीवन, च्वयनप्राश, मकरध्वज, और स्वर्णपर्पटी का सेवन क्यों नहीं किया और अपनी सगी पत्नी को चंचला क्यों होने दिया? महामति चाणक्य का मत कुछ और ही है, वह कहता है कि 'छिद्रदन्तो कचित्मूर्खः, खल्वाटो निर्धनः क्वचित्' अर्थात् दांतों के बीच में अन्तर होने पर शायद ही कोई व्यक्ति मूर्ख होता हो और गंजा सिर होने पर शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा होता हो जो धनाढ्य न हो। बुडहाउस, प्रिंस फ़िलिप और आगा खान को देखकर आप स्वयं ही सोच सकते हैं कि धनाढ्य होने का रहस्य मात्र गंजा होने में छिपा है। मेरे जैसे जो भाग्यहीन व्यक्ति हैं (जो छिद्रदंत होने पर भी बुद्धिहीन हैं और जो गंजा होने पर भी धनवान नहीं हैं) वे अपवाद हैं जिन्हें चाणक्य ने 'क्वचित्' कहकर पहिले ही 'चित्त' कर दिया है। अपने दंतों की दन्तकथा तो 'बेदान्ती' होने पर भी फिर कभी सुनाऊंगा। पर हां यह यहां जरूर बताऊंगा कि गंजा होने के बावजूद मेरी आर्थिक स्थिति 'देहरादून-म्यूनिसपैलिटी' की आर्थिक स्थिति की भांति सदा कष्टप्रद ही रही। मैंने घुड़दौड़ पर पैसा लगाया, लाटी के टिकट खरीदे, क्रॉसवर्ड पज़िल को सुलझाया और एक मीर साहब की अमीर व रूपवती विधवा से प्रेम भी किया पर धन के नाम कभी कुछ हाथ नहीं लगा। चाणक्य स्वयं इतने महान् साम्राज्य का महामात्य होकर भी विद्वानों को धनवान् नहीं बना सका और इसी कारण 'विद्वान् धनी, भूपति दीर्घजीवी' कहकर यवनिका के पीछे चला गया। मैंने सब कुछ किया पर 'भार्गव अंग्रेजी-हिंदी कोष' के अतिरिक्त और कोई 'कोष' मेरे हाथ कभी नहीं लगा।

नीतिशास्त्रों के अनुसार बुद्धिमान व्यक्ति अपने धन को पांच भागों में बांटता है। एक भाग पर वह अपने आनंद के लिए खर्च करता है, दूसरा भाग वह दुर्दिन के लिए संचय करता है, तीसरा भाग वह दान देता है, चौथा भाग वह और धन अर्जित करने के लिए व्यापार में लगाता है और पांचवा भाग वह अपने निकट के लोगों पर खर्च करता है जिनमें मेरे जैसे स्वार्थी मित्र सदा शामिल रहते हैं। भर्तृहरि के अनुसार धन की मात्र तीन ही गति

हैं—दान, भोग और नाश। जो न देता है और न भोगता है उसका धन स्वतः नष्ट हो जाता है क्योंकि दान, भोग और नाश के अतिरिक्त धन की और कोई गति होती ही नहीं। भारतेंदु हरिश्चंद्र भोगते भी थे, दान भी खुले हाथ से देते थे और फिर लाखों रुपयों के नोटों व हुंडियों को खुद जलाकर हाथ भी तापा करते थे। उनका कहना था कि जब इस धन को नष्ट ही होना है तो फिर यह क्रिया भी मेरे ही करकमलों द्वारा क्यों न पूरी की जाए? मिश्रबंधु इस सत्य पर सदा विस्मय करते रहे कि सब कुछ करने के बाद भी भारतेंदु मरते समय किसी के ऋणी नहीं थे।

विष्णुशर्मा के अनुसार लक्ष्मी जो है वह व्यापार में बसती है। व्यापारे बसति लक्ष्मी। मेरे विचार में 'पंचतंत्र' जैसे महान् ग्रंथ का यह लेखक महामति न होकर मात्र एक मूढ़मति था। लक्ष्मी सदा से चरित्रहीन रही और इसी कारण वह आजकल राजनीति में रहती है। गुंडे पालो, जाति और धर्म के नाम पर (या फिर डंडे के सहारे) चुनाव जीतो और उसके बाद वज़ीर बनो। वज़ीर बनने के बाद देश तुम्हारा और विदेश तुम्हारे बाप का। अमेरिका व यूरोप की यात्रा करो हालांकि न तुम उनका भूगोल जानते हो और न इतिहास। हुमायूं एक विद्वान् व्यक्ति था जो अपनी लाइब्रेरी के जीने से फिसल कर मरा था। अपने पिताश्री का यह अंत देखकर उसका सुपुत्र शहंशाह जलालुद्दीन अकबर सदा बेपढ़ा ही रहा। सलाह देने को नौ-रत्न थे और दिल बहलाने के लिए एक छोटा सा हरम था जिसमें सिर्फ़ चार हज़ार हसीना रहती थीं। आप भी वज़ीर बनने के बाद अमीरजादों का अपहरण कराओ, खाली कोठियों पर कब्जा करो और खुशामदियों को पुरस्कृत करो। चुनावों में जो 'रिगिंग' होता है वह 'ऋग्वेद' के अनुसार होता है। और शेषन जैसे मुख्य-चुनाव-आयुक्त क्या सदा रहेंगे? इसके बाद तबीयत के साथ जिंदगी के मज़े और सरकार का खजाना लूटो। प्रेस और बड़ी अदालतें ज़रूर तंग करेंगी पर उनसे क्या डरना? शेषन के बावजूद चुनाव-पेटियों में रबर के बैंड से बंधी वोटों की गड्डियां पाई गईं जो किसी भी नैतिक मार्ग से पेटी में नहीं जा सकती थीं। एक स्थान पर विरोधी-दल को वोट देने के कारण एक 'कुमारी कन्या' के साथ बलात्कार किया गया और उसे 'कन्याकुमारी' बना दिया गया। एक प्रदेश में एक ऐसे सरकारी प्रेस में आग लगा दी गई जहां कि मतपत्र छपे थे। न जाने कितनी विधानसभाओं में हिस्ट्री-शीटर विधायक बने विराज रहे हैं और श्री शेषन के अनुसार एक विधायक तो ऐसे हैं कि उनके खिलाफ़ हत्या तक के मुकद्दमे दर्ज हैं। ग़रीबों के लिए जो एक रुपया दिया जाता है, उसमें से मात्र दो पैसे उस तक पहुंचते हैं और बाकी पैसा मंत्री से लेकर ग्राम-प्रधान तक की जेबों में चला जाता है। ज्योति बसु के अनुसार 'ब्लाक-डेवलेपमेंट-आफ़ीसर' अब 'डेवलेपमेंट-ब्लाक-आफीसर' बन गए हैं जो एकदम सच है। एक विरोधी दल के नेता ने एक सत्ताधारी नेता के ऊपर तीन सौ करोड़ रुपये की रिश्वत लेने का आरोप लगाया है। न जाने कितने मुख्यमंत्रियों ने महल खड़े कर लिए, नेतागिरी को पैतृक धंधा बना दिया और

मुरारजीदेसाई तथा लालबहादुर शास्त्री को छोड़कर कोई ऐसा प्रधानमंत्री नहीं बचा जिसने कुछ न कुछ अनैतिक काम न किया हो। करोड़ों की रिश्वत ली जाती है और सजा उस गरीब आदमी को होती है जिसने शायद मजबूरी में दस रुपये की रिश्वत ली थी। पुराने नोट पूरी तरह नहीं जलाए जाते और जाली नोट बराबर छापे जाते हैं। विकास-योजना के नाम पर घाटे का बजट बनते गए और भ्रष्टाचार व अपव्यय पर कोई अंकुश नहीं लगाया गया। वज़ीर लोगों ने माफिया का साथ दिया और शराब, कबाब और शबाब—इन तीनों मुद्दों के काफ़िए पर जीवन समर्पित कर दिया। दिन में गांधी-जयन्ती मनाई और रात अपनी कोठी के ही कोठे पर गुजारी। एकदम सारा का सारा मुल्क वाजिद-अली-शाह के 'अवध' में बदल गया। लोगों का प्रजातंत्र से विश्वास उठ गया और धीरे-धीरे सारा देश आतंकवादी बनता चला गया। नेता लोग भोग में डूब गए, पुलिस का अपराधीकरण किया गया, सिविल सर्विस को कुत्ता बना दिया गया और विधान-सभाएं ऐसी अखाड़ा बन गईं कि कहीं कहीं तो एक दूसरे की लंगोटी तक उतार ली गई। और इस सबके बावजूद, जो कुछ भी किया गया वह विधान के अनुसार ही किया गया। सत्ता-प्राप्ति के बाद नेताओं ने कत्ल करवाए, औरतें भगाईं और दलितों को तो दलिया ही बना दिया। दरिद्रता को हटाने का जादू झूठा निकला और धर्म के नाम पर दंगे किए गए जो सच्चे थे। वही जनता जो गांधी जी के एक इशारे पर अपनी जान देने को तैयार रहती थी, अब निराश व भ्रष्ट हो गई। देश का इससे ज्यादा पतन और क्या हो सकता था? इन्द्रियों का झूठा जाल सच्चे इंद्रजाल से आगे निकल गया। यथा राजा, तथा प्रजा—यह कहावत सच्ची-सच्ची निकली। हाथी पर ज्यों महावत, बातों में त्यों कहावत (शरद् जोशी)

इंद्रियों का जाल स्वयं में एक जाल है जिसमें योगी, तपस्वी, साधु और संन्यासी तक आदिकाल से फंसते आए। रूपवती रमणी के 'दर्शन' के सामने 'दर्शनशास्त्र' की भला क्या हैसियत है? 'श्रुति' बड़ी या रूपसी की 'स्मृति' बड़ी? स्त्री के पांच अंगों के सामने पंडित का 'पंचांग' क्या कभी टिका है? कामिनी के कानन में 'वेदांत' का 'अंत' हो जाता है, 'पतंजलि' को 'तिलांजलि' दे दी जाती है, 'मीमांसा' का 'मांसाहार' हो जाता है, 'पुराण' 'परान्न' हो जाते हैं, नायक की 'खतरनाक' नाक कट कर 'दर्दनाक' हो जाती है, 'व्यास' के नाम से पशु का 'आभास' मिलता है, 'संगीत' जो है वह 'भयभीत' करता है, 'कला' को 'काल' कवलित कर लेता है और 'गुण' जो है वे 'घुन' बन जाते हैं। 'प्रीति' के सामने 'नीति' नहीं रहती और 'रति' के सामने 'रीति' का ज्ञान नहीं रहता। सुंदर युवती के सामने सब फीका है। सभी अलोना लोन बिन। लावण्य के बिना यौवन में माधुर्य नहीं आता—यह स्थिति सचमुच 'विचित्र' है जो कुछ पुस्तकों में 'सचित्र' भी दिखाई जाती है। यत्राकृति : तत्र गुणाः वसन्ति (कालिदास) सुंदरी को हीरे की मुंदरी पहिनाइए और 'हीर' के साथ 'रांझा' बनिए। वक्त मिले तो भगतसिंह, राजगुरु, बिस्मिल, अशफकाउल्लाह खाँ व खदीराम बोस

की मजार पर घी का दीपक जलाकर मेले का उद्घाटन कीजिए और उसके बाद लिक्खाड़ों की प्रशस्ति सुनिए, कवियों की कविताई का आनन्द लीजिए और उसके बाद फिर किसी गदराई ग्रामबाला के वक्ष में अपना सिर रखकर विश्राम कीजिए। ग़म लीडर को बहुत हैं, मगर आराम के साथ (अकबर) कमसिन है तो प्रतीक्षा करनी पडेगी क्योंकि "लतायां पूर्वलोनायां कुसुमस्यागमः कुतः"। "क्षणे क्षणे यन्नवतां विघंते, तदैवरूपम् रमणीयतायाः"। "काव्यं सुधा रसज्ञानाम् कामिनां कामिनी सुधा, धनं सुधा सलोभानाम् शान्ति संन्यासिनां सुधा।" लड़की का नाम यदि सुधा है तो वह संन्यासी द्वारा भी भोग्या है। देवि शरण मैं तुम्हारी गहूऊं, करन चहौं नहि जेतौ कहऊं। स्वछंदता दिशा चहौं नारिन, दोषी अधिक नहिं व्यभिचारिन्। स्त्रियों से कभी मन नहीं भरता। यह स्थिति राजनेताओं के ही साथ नहीं वरन् राजा ययाति के साथ भी थी। आशावधि को गतः? कवि कहता है :

इयमधिक मनोज्ञा, बल्कलेनापितन्वी
किमपि इव मधुराणां, मंडनं ना कृतीनाम्।

नीतिकारों ने यह भी कहा है कि धन संभालकर ही रखना चाहिए। प्रत्येक धनी व्यक्ति के चारों ओर मित्र, रिश्तेदार व कुल के लोग उसे घेरे रहते हैं। इनसे 'तर्क' करने के बजाय 'सतर्क' रहना ज्यादा ज़रूरी है। 'घाघ' कवि के अनुसार, बाढ़ खोवै नाला, दिवार खोवै आला तथा घर खोवै साला। हमें सदा ऐसी ही नारियों से प्रेम या विवाह करना चाहिए जिसके भाई न हों। बहिन हैं तो चलेगी पर भाई हो तो नहीं चलेगा। कवि कहता है :

मामातरो भागिनेयाः मातुलोदार बाँधवाः
आज्ञात एव गृहिणां, भक्षयन्त्या सुखद गृहम्।

धन के कुछ कष्ट भी हैं। पहिला कष्ट तो यह है कि धन की रक्षा करनी पड़ती है। दूसरा कष्ट यह है कि धन से कभी मन नहीं भरता। तीसरा और सबसे बड़ा कारण यह है कि धनी व्यक्ति को हमेशा निर्धन बने रहने का भय बना रहता है। प्रातर्भवामि वसुधधिपचक्रवर्ती, सोहं ब्रजामि विपिने जटिलस्तपस्वी। धनी से निर्धन बनना बहुता कष्टप्रद होता है : अर्थोष्मिणां विरहितः पुरुषः स एव, अन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्। दरिद्र पुरुष को सदा चिन्ता घेरे रहती हैं। कवि कहता है :

घृतलवणतैलतन्दुलतक्रेन्धन चिन्तया सततम्-
नश्यन्ति विपुलमतेरपि बुद्धिः पुरुषस्य मंदविभव

ग़रीब आदमी को सुन्दर स्त्री भी पाप का मार्ग दिखाई पड़ती है। मनमलीन तन सुन्दर कैसे, विषरसभरा कनकघट जैसे। गरीब आदमी का तो बोलना भी हमें अच्छा नहीं लगता। बात बात पै पड़ै हथौरी, सभा माँहि बोलै बड़ जोरी। मैंने दो ऐसे लोग देखे हैं जो मात्र अफ़ीम खाने की लत में करोड़पति से भिखारी बन गए थे। मेरे अपने परनाना ने अफ़ीम के चस्के में अपना एक पूरा गांव खो दिया था। समय समय की बात है समय बड़ा बलवान्, भीलों छीनी द्रौपदी वही अर्जुन वही बान। धनी व्यक्ति को कुछ फुटकर कष्ट भी होते हैं। पं. प्रतापनारायण मिश्र ने एक रईस को देखा था जिसे मूत्र बहुत आता था। हर पन्द्रह मिनट बाद वे रज़ाई के बाद रज़ाई और कपड़े के बाद कपड़े उतारते थे और फिर लघुशंका के लिए पेशाबघर की दिशा में दौड़ते थे। वृद्ध होने के कारण उनके गुर्दे शायद मुर्दे हो गए थे और इसी कारण कभी-कभी तो उनका पेशाब पेशाबघर पहुंचने से पहले ही निकल जाता था। मिश्र जी ने उस रईस का कष्ट देखा और अपनी गरीबी भूल गए क्योंकि फ़िराक साहिब की भांति मिश्र जी भी तबियत जहां होती थी, वहीं मूतने बैठ जाया करते थे। अमीर आदमी का अन्तिम कष्ट यह होता है कि वह हमेशा ही सोचता रहता है कि मैं तो मर जाऊंगा पर मेरी यह दौलत यहीं रह जाएगी। महमूद गजनवी को भी यही दुख सताया करता था। कवि के शब्दों में धनवान् व्यक्ति की स्थिति यह रहती है कि वह इसी चिंता में पड़ा रहता है :

सदा न फूलै तोरई, सदा न सावन होय
सदा न जोवन थिर रहै, सदा न जीवे कोय

'विषयी' न होने के कारण अब यह 'विषयान्तर' समाप्त करता हूँ और फिर गंजे आदमी को पकड़ता हूं, हालांकि बाल न होने के कारण गंजे आदमी को पकड़ना कोई आसान काम नहीं है। गंजे व्यक्ति को धूप ज्यादा लगती है। भर्तृहरि ने एक ऐसे व्यक्ति की कथा कही है जो धूप से त्रस्त होने के कारण एक बेल के महावृक्ष के नीचे सिर ठंडा करने को रूका मगर वृक्ष से एक बड़ा बेल का फल कुछ इस तरह गिरा कि वह फल और उस गंजे व्यक्ति का सिर दोनों एक साथ फूट गए। गंजे आदमी के सिर पर उसकी अपनी या किसी पड़ौसी की पत्नी तबला बजा सकती है। फ्रांस में दो गंजे एक दूसरे की चांद में अपना मुंह देखकर हजामत बनाया करते थे। 'बेनहर' नामक विश्वप्रसिद्ध फ़िल्म का नायक अपना सिर मुंडा हुआ ही रखा करता था और उसकी देखा देखी न जाने कितने दर्शकों ने अपने सिर का मुंडन करवा लिया था। मैं भी उन सिर मुंडाने वालों में से एक था। हालांकि सिर मुंडाते ही मुझ पर ओले नहीं पड़े। खुदा गंजे को नाखून नहीं देता। सैमसन की सारी शक्ति उसके सिर के बालों में ही छिपी थी। इधर लन्दन में एक क्लब खुला है जिसका सदस्य कोई भी हो सकता है बशर्ते कि वह गंजा हो। इस क्लब का नारा है कि "ओ संसार भर के गंजों,

तुम एक हो जाओ। सिर के बचे खुचे बाल खोने के अलावा तुम्हें और कोई खतरा नहीं है।" आप यदि चाहें तो गंजा होकर इस क्लब का सदस्य बन सकते हैं। गंजे होने के कारण कई हैं। कुछ लोग गंजेपन को विरासत में पाते हैं जबकि कुछ लोग मात्र जलवायु के कारण ही गंजे हो जाते हैं। कुछ लोग इस कारण गंजे होते हैं क्योंकि वे बहुत तंग टोप या टोपी पहनते हैं। जबकि कुछ लोग जूते खाने से ही 'गंजत्व' प्राप्त कर लेते हैं। यह ढंग देशी होने के कारण काफ़ी सस्ता व सरल है।

अब यह प्रबंध समाप्त करता हूं। आज मैं पूरे छियासठ वर्ष का अधेड़ व्यक्ति हो गया। पता नहीं, ऊपर की अदालत का सम्मन कब आ जाए। आज सारा दिन मैं अपने जीवन का लेखा-जोखा लेता रहा। नादिरशाह वृद्ध व्यक्तियों से मिलने में डरता था क्योंकि मृत्यु का भय कम होने के कारण वे स्पष्टवक्ता होते थे। मेरी जीवन-यात्रा भी अब अपने पड़ाव पर आ गई। मैंने सुख भी सहे और दुख भी भोगे मगर कुल मिलाकर दुख का हिस्सा बहुत ज्यादा रहा। बचपन कंगाली में गुजरा और बाकी जीवन 'मानसिक-अवसाद' व 'मधुमेह' के कारण दुखी ही रहा। दो बार आत्महत्या की कोशिश की पर फल पर अपना अधिकार न होने के कारण दोनों बार जीवित ही बच गया। यह 'मधुमेह' का रोग एक राष्ट्र-विरोधी रोग है। देश में चीनी की कमी है, लोग थोड़ी सी चीनी प्राप्त करने के लिए जीवन भर 'क्यू' में खड़े रहते हैं और मैं हूं कि बिना किसी संकोच के उसी चीनी को अपने मूत्र के साथ नाली में बहा रहा हूं। कभी-कभी सोचता हूं कि यदि मैं मुरारजी देसाई की भांति अपने मूत्र का प्रयोग अपने आप ही करने लगूं तो कम से कम मेरे जिस्म की चीनी बेकार तो न जाए। आदमी चंद्रमा पर पहुंच गया पर मधुमेह व डिप्रेशन का इलाज अभी तक नहीं निकाल सका।

अपने जीवन में मैंने बाकी लोगों की भांति हानि और लाभ, यश व अपयश और सम्मान व अपमान—सभी को भोगा और सभी को झेला। खूब पढ़ा और खूब घूमा। मेरा कोई सच्चा मित्र कभी नहीं रहा और न मैं ही किसी का सच्चा मित्र बन सका। कुछ तथाकथित आत्मीयों और मित्रों ने काफी बड़े धोखे दिए और जो मित्र मुझे धोखा नहीं दे सके, उनको मैंने धोखे दिए। गिने चुने सिद्धान्त रखे और उन्हें कभी नहीं तोड़ा। जिन लोगों ने मेरा अपमान किया उनसे मैंने बदला लिया और जहां बदला नहीं ले सका वहां उन्हें क्षमा कर दिया। फ़ार्गेट एंड फ़ारगिव। हेट दी सिन बट नाट दी सिनर। जज नाट, यू शैल नाट बी जज्ड। ईश्वर और धर्म के मामले में खाकसार सदा अवसरवादी ही रहा। धर्म में सबसे बड़ा गुण यह है कि अपनी इच्छानुसार आप उसे किसी भी तरह तोड़-मोड़ सकते हैं। दर्शन शास्त्र व इतिहास का ज्ञान ज्यादा जरूरी है क्योंकि उनमें इंसान की कथा है। जबकि भौतिक विज्ञानों में सृष्टि की कथा है जो शायद नीरस है। मुझसे सब प्रकार हीन व्यक्ति डाइरेक्टर

जनरल, सचिव, राजनेता, एयर मार्शल व राजदूत बने जबकि मैं मात्र एक साधारण साहित्यकार ही रहा, और कुछ नहीं। साहित्यिक संसार में भी मुझे अपना पूरा हक अभी तक नहीं मिला जिसका मुझे कोई गिला नहीं। यदि प्रेमचंद, निराला, बख्शी जी , ठाकुर प्रसाद सिंह व रांगेय राघव एक मामूली मुदर्रिस, फकीर, चपरासी, बाबू और कुली जैसा जीवन जीते रहे तो भला मुझे क्या शिकायत हो सकती है? कुल मिलाकर स्थिति वही रही जो शहंशाह अकबर के सगे मौसेरे भाई अब्दुर्रहीम खानखाना ने सैकड़ों वर्ष पूर्व बताई थी और जिससे मैं पूर्णतया संतुष्ट हूं। रहीम कहता है :

निज कर क्रिया रहीम कहि, सुधि भावी के साथ
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ।

□

दाएं और बाएं हाथ का पता

नरेन्द्र कोहली

मामला लड़के की शादी का हो या लड़की की शादी का, खोजबीन दोनों पक्षों की ओर से होती है। इस खोजबीन में तथ्य छुपाए भी जाते हैं। और इस छुपाने के कारण कुछ मजेदार स्थितियां भी पैदा होती हैं। ऐसी ही कुछ मजेदार स्थितियों को हिंदी व्यंग्य के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर नरेन्द्र कोहली प्रस्तुत कर रहे हैं। नरेन्द्र कोहली को उनकी साहित्य साधना के लिए हिंदी अकादमी ने 1995-96 का शलाका सम्मान देने का निर्णय भी लिया है।

पिता सेना से अवकाश ले किसी बड़ी अंतर्राष्ट्रीय कंपनी में उच्च पदाधिकारी थे। (आज-कल सब ही होते हैं)। माता सुशिक्षित धर्मभीरू महिला थीं (यह भी प्रत्येक भारतीय घरेलू स्त्री के विषय में परम सत्य है)। कन्या एक कालेज में लैक्चरर थी। शिक्षा की दृष्टि से एम.ए.,एम. फिल थी, और अब पी-एच डी. कर रही थी।

"लो, तुम तो कहते थे कि हमारे बेटे को लैक्चरर लड़की मिल ही नहीं सकती।" पत्नी ने अपनी प्रसन्नता में मेरी फजीहत कर डाली। कदाचित् यह भी पत्नियों का एक अनिवार्य व्यसन होता है।

"अभी लड़का उन्होंने देखा तक तो है नहीं और तुम मान भी बैठी कि तुम्हें लैक्चरर बहू मिल गई।" मैंने अपना बचाव किया।

"क्यों? हमारे बेटे में कोई कमी है क्या।"

"नहीं! पर उस के बाप में तो हजार कमियां हैं।" मैंने कहा, "लोग घर बार भी तो देखते हैं।"

पत्नी चाहते हुए भी इसका समर्थन नहीं कर सकी और विरोध करना नहीं चाहती थी। चुप रह गई।

"तो पता लगाएं, उन के द्वारा भेजी गई सूचनाएं ठीक तो हैं।" मैंने पूछा।

"ठीक ही होंगी। कोई झूठ क्यों बोलेगा। बेटी का विवाह करना है, कि नहीं।" वह बोली, "पर तुम कर लो अपनी जासूसी की हुड़क पूरी।"

"आजकल लोग बहुत झूठ बोलते हैं।" मैंने चेताया, "रिश्ता करने के बाद हजार बातें खुलती हैं।"

"हां। ठीक है। पर हमें बहुत कुछ नहीं चाहिए।" पत्नी ने कहा, "बेटे को उस का मुखड़ा पसंद आ जाए तो हां कर दो।"

कॉलेज में छानबीन करने में कोई कठिनाई नहीं थी। वहां तो अनेक लोग परिचित थे। संयोग से अपनी एक छात्रा पिछले वर्ष ही वहां नियुक्त हुई थी। उसी को फोन कर दिया, कि लड़की देख ले।

उसने संध्या समय ही सूचना ला दी, "सर! इस नाम की तो कोई लैक्चरर है ही नहीं हमारे यहां। मैंने कई लोगों से पूछ लिया है।"

"यह कैसे हो सकता है।" मेरी पत्नी बोली।

"कुछ नहीं! यह लड़की ही पागल है। स्टाफरूम में बैठे दो चार लोगों से पूछ लिया होगा और मान लिया कि इस नाम की कोई लड़की ही वहां नहीं है।" मैंने कहा, "आजकल कोई मन लगाकर काम तो करना ही नहीं चाहता। परिश्रम करना पड़ता है न।"

"तो अब क्या करोगे?"

"करना क्या है, किसी वरिष्ठ आदमी से कहता हूं। अंग्रेजी विभाग में ही है वह श्रीमती चावला। उसी को कहता हूं। उसके विभाग की है। वह अवश्य जानती होंगी।" मैंने पत्नी को आश्वस्त किया।

पर मैं स्वयं ही आश्वस्त नहीं हो पाया। संध्या समय ही श्रीमती चावला का फोन आ गया, "कोहली साहब! इस नाम की कोई लड़की हमारे यहां नियुक्त नहीं हुई है। आपकी सूचना सही नहीं है।

मैं चौंका। उनका फोन नंबर तो पास था ही। सीधे वहीं फोन कर दिया। घर पर कन्या के पिता नहीं थे। अतः उसकी मां से ही उसकी डिग्री संबंधी दो एक प्रश्न पूछे। वे धर्मभीरू तो थीं, किंतु किसी और से नहीं डरती थीं। बोलीं, "हमने तो आपके लड़के के विषय में कोई छानबीन नहीं की।"

"अवश्य करें।" मैंने कहा, "सहज ही किसी पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिए।"

"आप कर लीजिए जो जासूसी करनी है।" वह बोली, "हमें कोई एंक्वयारी नहीं करनी है।"

"कॉलेज के लोग कहते हैं कि उनके यहां इस नाम की कोई लड़की नहीं पढ़ाती।" मैंने कहा।

"झूठ बोलते हैं।" उसने मुझे बताया, "कोई किसी की खुशी तो देख ही नहीं सकता। सब जलते हैं। हमारी लड़की लैक्चरर हो गई तो कोई क्यों मान लेगा।"

मुझे भी लगा कि भले लोगों पर इस प्रकार संदेह नहीं करना चाहिए।

मामला गंभीर हो चला था। मैं और किसी पर विश्वास नहीं कर सकता था। मैंने कॉलेज की प्रिंसिपल को फोन कर दिया। उसने मुझे बताया कि उनके यहां अंग्रेजी विभाग में पिछले तीन वर्षों से कोई नियुक्ति नहीं हुई थी। इसलिए ऐसी किसी लड़की के उनके यहां होने का कोई प्रश्न ही नहीं था।

मेरी स्थिति टेनिस के गेंद की सी हो रही थी। मैंने फिर कन्या पक्ष के यहां फोन कर दिया। इस बार उसके पिता जी बोले। मैंने अटपटे से शब्दों में उन्हें बता दिया कि कॉलेज की प्रिंसिपल क्या कह रही है।

उन्होंने मुझे नहीं डांटा। बोले, "देखिए, इस देश में कितनी अव्यवस्था है। हमारी आर्मी में ऐसा होता तो कोर्ट मार्शल हो जाता। दाएं हाथ को बाएं हाथ का पता नहीं है। प्रिंसिपल को पता नहीं कि उनके यहां कौन-कौन पढ़ा रहा है।" वे कुछ रूके, "मैं प्रतिदिन उसे कॉलेज में छोड़कर अपने दफ्तर में जाता हूं और शाम को लौटते समय वहीं से उसे लेकर घर आता हूं। अभी भी वह तैयार हो रही है। उसका पहला पीरियड है। वह प्रथम वर्ष अंग्रेजी आनर्स की क्लास कमरा नंबर 15 में लेगी। आप भी जाइए और प्रिंसिपल को भी ले जाइए और देख लीजिए कि वहां मिस रश्मि साहनी पढ़ा रही है या नहीं। प्रिंसिपल बन जाती है और एडमिनिस्ट्रेशन का क, ख, ग, नहीं मालूम।"

उन्होंने फोन रख दिया।

इतनी निश्चित सूचना पाकर मैं रूक नहीं सका और गलत सूचना देने के लिए प्रिंसिपल को डांटने का प्रयत्न किया। उन्होंने मेरी बात सुनी और बोलीं, "कॉलेज का टाइमटेबल मेरे सामने है। फर्स्ट इयर इंग्लिश आनर्स की क्लास मिसिज थडानी ले रही हैं और वे हमारे कॉलेज में बीस वर्षों से हैं।"

मैंने फिर उसके पिता को फोन कर दिया। सौभाग्य से वे अभी घर से निकले नहीं थे। उन्होंने बताया कि प्रिंसिपल क्या कह रही है, तो वे नाराज हो गए। पिछले छह महीने से वह वेतन घर ला रही है, तो वह मिसिज थडानी का नहीं है न! क्लास ले रश्मि चावला और टाइमटेबल में नाम लिखा जाए श्रीमती थडानी का। हद है शोषण और बेईमानी की।" और उन्होंने मुझे परामर्श दिया, "आप स्वयं जाकर क्यों नहीं देख लेते कि वहां कौन पढ़ा रहा है। इसी बहाने आप मेरी बेटी को देख भी लेंगे।" और उन्होंने फोन पटक दिया।

मुझे अपनी भूल ज्ञात हो गई। बात तो सारी वेतन की है। मुझे पहले क्यों नहीं

सूझा। कॉलेज का एकाउंटेंट तो मेरा परिचित ही है। उसको पूछता हूं कि इस नाम की लैक्चरर का वेतन बन रहा है कि नहीं।

उसे फोन किया। मेरी सेवा कर उसे बहुत प्रसन्नता हुई। बोला, ''इस नाम की किसी लैक्चरर का वेतन हमारे रजिस्टर से तो कभी गया नहीं। और आप कह रहे हैं कि उसकी नियुक्ति अभी तीन महीन पहले हुई है तो हमारे यहां अंग्रेजी विभाग की सबसे जूनियर पंद्रह वर्षों से पढ़ा रही है। आपको अवश्य ही कोई गलतफहमी हुई है।''

इस गोरखधंधे से मैं बहुत दुखी हो चुका था। पत्नी अलग कई बार डांट चुकी थी कि इतनी छोटी सी बात का पता नहीं लगा पा रहे। कन्या के पिता से बात करने का साहस नहीं हुआ। उसकी मां के पास ही संदेश छोड़ दिया कि वे लोग लड़का देखने न आएं। कुछ कारणों से हम इस बात को अभी आगे बढ़ाना नहीं चाहते।

तीन महीने बाद प्रिंसिपल का फोन आया, ''हमने आपकी मिस रश्मि साहनी को खोज लिया है। हम चाहेंगे कि आप उससे मिल लें। कृपया तत्काल कॉलेज आ जाएं।''

''हम बेटे का संबंध तय कर चुके हैं।'' मैंने कहा, ''उस लड़की में अब हमारी कोई रूचि नहीं है।''

''पर हमारी रूचि इसमें है कि आप आकर उन लोगों से मिल लें।'' प्रिंसिपल बोलीं, ''जल्दी आइए। मैं प्रतीक्षा कर रही हूं।''

कुछ उनके आग्रह और कुछ अपनी उत्सुकतावश मैं कालेज जा पहुंचा।

प्रिंसिपल के कार्यालय में साहनी साहब और उनकी सुपुत्री दोनों ही उपस्थित थे।

''ये है रश्मि साहनी और ये हैं उसके पिता कर्नल साहनी। आपने सेना के जासूसी विभाग में लंबी नौकरी के पश्चात् अवकाश प्राप्त किया है और अब एक अंतर्राष्ट्रीय कंपनी की सुरक्षा का काम देख रहे हैं।'' प्रिंसिपल ने बताया, ''आपको मैंने स्वयं टेलिफोन पर सूचना दी कि आपकी बेटी हमारे यहां नहीं पढ़ाती, तो इन्होंने मुझे ही डांट दिया कि मैं झूठ बोल रही हूं। पहले किसी को नियुक्त करती हूं और फिर भूल जाती हूं कि वह मेरे कालेज में है अथवा नहीं। यहां बाएं हाथ को दाएं हाथ की खबर नहीं है। कैसे कॉलेज चलाती हूं मैं।''

कर्नल साहब सिर झकाए बैठे रहे और थोड़ी देर में क्षमा प्रार्थना कर उठ कर चले गए।

उनके जाने के पश्चात् मैं कुछ खुला, ''आपने मेरे कहने पर इतनी छानबीन की?''

''आपके कहने पर क्या, हम तो तंग आ गए इस लड़की से। हमारे कॉलेज की पुरानी छात्रा है। कॉलेज तथा अध्यापकों के विषय में बहुत कुछ जानती है। एम.ए. में फेल हो गई तो घर पर झूठ बोलना आरंभ कर दिया। एम.ए. हुई नहीं और कह दिया एम.फिल. कर लैक्चरर हो गई हूं। बाप ने सारे समाचारपत्रों में बेटी के विवाह का विज्ञापन दे दिया। नाम हमारे कॉलेज का होता था तो लोग हम से ही पूछते थे। इतने प्रश्नोत्तर करने पड़ते थे। दुखी कर दिया इस लड़की ने।''

"पर वेतन भी तो देती होगी घर में।" मैंने कहा।

"लड़की बेटी है। बाप वेतन लेता नहीं। अपनी ही ओर से कुछ न कुछ देता रहता है। बाप के साथ ही घर से आती जाती है।" प्रिंसिपल ने कहा।

"उसने बेटी ने पूछा नहीं कि वह इतना झूठ क्यों बोलती रही?"

"उसके लिए पुत्री के पास बहुत ही भावुक और आदर्श उत्तर है। उसके पापा की बहुत इच्छा थी कि उनकी पुत्री लैक्चरर बने। वह नहीं बन सकी, पर यदि सच बता देती तो पाप का मन टूट जाता। वह पापा का मन नहीं तोड़ना चाहती थी।"

"अब नहीं टूटेगा उसके पापा का मन?" मैंने जिरह की।

"इतनी दूर तक वह नहीं सोचती। वह तो तात्कालिक समाधान खोजती है।"

प्रिंसिपल बोलीं, "अब आप भी अपने सुपुत्र की डिग्रियां-विग्रियां चेक कर लीजिए।"

"नहीं! मेरा बेटा झूठ नहीं बोलता। हम एक दूसरे को संदेह की दृष्टि से नहीं देखते।" मैंने पूर्ण विश्वास से कहा।

"मिस रश्मि साहनी के पापा का भी यही विश्वास था। वे भी अपने घर में किसी पर संदेह नहीं करते।" प्रिंसिपल ने कहा, "इसी नीति पर चल रहा है सारा देश। इसीलिए आज तक देश के वास्तविक शत्रु कभी पकड़े नहीं गए।" □

अपने-अपने स्वयंवर

डॉ. गोपाल चतुर्वेदी

एक समय था जब स्वयंवर को सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। स्वयंवर आज भी रचनाए जाते हैं परंतु उनके ढंग अलग-अलग हैं। गोपाल चतुर्वेदी की कलम जब ऐसा कोई विषय उठाती है तो उत्सुकता जागती है कि देखें लेखक क्या और कैसे कहता है। हिंदी अकादमी द्वारा व्यंग्य लेखन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण लेखन के लिए शिखर सम्मान से सम्मानित गोपाल चतुर्वेदी की प्रस्तुत रचना में मजेदार घटनाएं और परिस्थितियां हैं।

समय के साथ सही आदमी की पहचान के तरीके और मानक बदलते रहते हैं। रामायण-काल में शादी स्वयंवर के जरिये होती थी। सीता विवाह के लिए योग्य-अयोग्य राजकुंवर 'इनवाइट' हुए थे। धनुष उठाने की शर्त रखी गई। दूल्हा वही जो धनुष उठाये। राम जी ने यह करतब कर दिखाया। आज भी लोकमानस में राम-सीता की जोड़ी अमर है।

सीता स्वयंवर का धनुष तो केवल एक प्रतीक है। इसके गूढ और बहु-आयामी अर्थ हैं। भारी धनुष उठाना वैवाहिक भार का द्योतक है। जब तक अकेले थे, गुजर हो गई। अब मामला मुश्किल है। जिन्दगी भर शादी के वजनदार धनुष का भार ढोना है। बीबी सुन्दर है तो हर मोड़ पर रावण है। उनसे पत्नी की रक्षा करनी है। यों लड़की खूबसूरत नहीं होती तो कोई मूर्ख ही भरे दरबार में अपनी वीरता या निर्बलता का सार्वजनिक प्रदर्शन करता।

जाहिर है खुली प्रतियोगिता के माहौल में शादी का दर्जा एक आग के दरिया का है। बाहुबल का धनी और खतरों से खेलने का शौकीन साहसी इंसान ही उसमें छलांग लगा सकता है। भारतीय समाज ने हमेशा गुणवानों की कद्र की है। शादी शुदा लोग समाज

में सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। मकान मालिक ऐसों को अपना किरायेदार बनाना पसंद करते हैं। उन्हें ज्ञान है। कुंवारी कन्या या मर्द कभी भी भाग सकता है। वैवाहिक युगल के साथ ऐसा चांस सिर्फ फिफ्टी परसेन्ट है। एक ने जीवन के रण क्षेत्र से पलायण किया भी तो दूसरा तो किराया चुकाने को हाजिर रहेगा।

भारतीय इतिहास औरतों की श्रेष्ठता का गवाह है। एक सीता के कारण रावण के साथ-साथ सोने की लंका और राक्षसों का विनाश हो गया। न द्रोपदी होती न महाभारत। यह तो औरतों की मेहरबानी है कि इधर उन्होंने आदमियों की बराबरी स्वीकार कर ली है। वरना उनका स्थान हमेशा पुरुषों से ऊपर रहा है।

हमें अफवाहों से सावधान रहना चाहिए। उनसे व्यक्ति का ही नहीं मुल्क का भी नुकसान होता है। अखबारों में दहेज और उसके बगैर स्त्रियों के जलने-मरने, दुर्घटनाग्रस्त होने जैसी बेबुनियाद खबरें छपती रहती हैं। नारी प्रमुख भारतीय समाज में ऐसा होना कतई नामुमकिन है। वास्तविक हालात इससे बिल्कुल भिन्न है। "धनुष-उठाओ-कम्पीटीशन" के स्थान पर आजकल शादी के पहले पुरुषों की पाकशास्त्र के बारे में परीक्षा ली जाती है। कभी-कभार यह इम्तिहन अनजाने भी हो जाता है। किसी पार्टी में सुन्दर कन्या कुंवारे युवा से प्रश्न करती है—"यह बटर चिकन खाया आपने। बड़ा लजीज बना है। आपको पता है कि इसको कैसे पकाते हैं?" मूर्ख युवा, इस जानकारी से इन्कार कर देते हैं। "समझदार फरमाते हैं—"चिकन क्या, मेरे हाथ की चिंगड़ी चखिये। आप यह पूरी दावत भूल जायेंगी।"

इसके बाद मेल मुलाकात का सिलसिला चल निकलता है। लड़की लड़के की बनाई 'चिंगड़ी' चखती हैं। उसका मुकाबला दूसरे प्रत्याशियों की बनाई मछली-मुर्गी से करती है। फैसला सदा पाकशास्त्र के बेहतर उस्ताद के पक्ष में होता है।

आज के विवाहित पुरुष की व्यस्तता की कल्पना भी मुश्किल है। बाहर के काम-काज के अलावा सुबह की चाय से लेकर रात के भोजन तक की जिम्मेदारी निभाना आसान है क्या? कभी न कभी बेचारा बाप बनता है। उसके बाद उसकी रूटीन और कठिन हो जाती है। शिशु के लालन-पालन से स्कूल तक का दायित्व अकेला पिता निभाता है। लाजमी है कि इन सब काम-काजों के दर्मियान कभी गैस खुली रह जाये या स्टोव फट पड़े। परम्परा से बंधी भारतीय नारी का अपने पति को ऐसे हादसे से बचाने का प्रयास लाजमी है। वह अपनी जान हथेली पर रखकर दुर्घटना स्थल के अग्नि क्षेत्र में कूद जाती है। बहुधा नतीजा दुःखद निकलता है। उसके प्राणों के उत्सर्ग से उसका पति तो बच जाता है पर पूरा परिवार शक की सुई के दायरे में आ जाता है।

दहेज की वजह से पैट्रोल छिड़क कर मरने जैसे किस्से-किंवदन्तियों के पीछे असल में पुरुष का पारिवारिक दायित्व निभाने का कमर तोड़ निश्चय और सावित्री जैसी पत्नी का

अपने सत्यवान पति को आग के मुंह से निकालने का आग्रह है। समाचार पत्र इस फैमिली ड्रामे को ग्लेरस बनाने के चक्कर में उसे दहेज के लालच से लबरेज कर देते हैं। अखबारों की शरारत के शिकार केवल आम आदमी ही नहीं, हमारे लोकप्रिय राजनेता भी हैं।

जनता अपने जैसे सामान्य जन पर यकीन करे या न करे नेता पर तो करेगी ही। प्रजातंत्र की यही तो खासियत है। जनता अपनी किस्मत की डोर नेता को सौंप निश्चिंत हो जाती है। पाक-कला की महारत के अलावा कुछ स्त्रियां ऐसी भी हैं जो अपने जीवन साथी में खानदानी विरासत के तत्व भी तलाशती हैं। यह एक दुखद तथ्य है कि आजाद भारत ने समाजवाद के चक्कर में अपने राजा-महाराजा गंवा दिए। हमें तो अपनी राष्ट्रीय कम-अक्ली पर हैरत होती है। लोग आज भी सर्कस या अजायबघर में शेर को कितने चाव से निहारते हैं। देश के हर कोने से विदेशी पर्यटक हमारे दर्शनीय राजाओं को देखने पधारते। टिकट खरीदकर उनके महलों में घूमते। कभी-कभी चोबदारों को घूस देकर उनकी झलक भी पा लेते। हमें खुशी है कि भारतीय नारी के हृदय में परम्परा का सम्मान अभी भी शेष है।

कुछ लड़कियों को लुप्त होते वन्य पशुओं के संरक्षण में रुचि है। उन्हें उनके दोस्त समझाते हैं—"जांच परख लो। आदतन इसने सिर्फ गंवाना सीखा है। न काम का है न काज का। न घर का है न बाजार का। कब तक पूंजी खायेगा।" पर हमारे देश में दृढ़ निश्चय पर महिलाओं का एकाधिकार है। अगर किसी ने इतिहास पर शोध करने की ठानी है तो उसे कौन माई का लाल रोक सकता है।

कुछ महिलाओं को सामाजिक श्रेष्ठता-चिह्नों का भी शौक है। उन्हें जेवर, कार, कपड़े पसन्द हैं। उन्हें पत्र-पत्रिकाओं में छपा अपना नाम और फोटू लुभाते हैं। दिक्कत एक है। ऐसे कौन हैं जिनके आगे-पीछे वीडियो कैमरा लिए लोग दौड़े। हमारा समाज और अखबार दोनों इस बारे में भ्रमित है। कभी यह हैसियत जन नेताओं की थी। गांधी, नेहरु जहां जाते, वहां लोग उमड़ पड़ते। कुछ दिनों बाद अखबारों की सुर्खी तस्कर और माफिया के हवाले हो गई। उनके जीवन पर फिल्में बनी। सुना है कि ऐसे लोग परदे के पीछे रहकर खुद भी फिल्मों के निमार्ण में खासे सक्रिय है।

हीरो-हीरोईन की लोकप्रियता को कौन नकार सकता है पर उनसे शादी का सपना एक टेढ़ी खीर है। शादी-शुदा नायकों के जीवन से आधुनिक कुमारियां सबक सीखती हैं। उन्हें पालतू पत्नी बनाकर अपने व्यक्तित्व का हनन नहीं करना है।

आपराधिक अतीत या वर्तमान वाले लोगों में अच्छे पति बनने की काफी सम्भावनायें हैं। उन्हें सरकारी तिहार जैसे सुधार गृहों में रहकर अपना काम आप करने की बखूबी रियाज हो जाती है। वह दूसरों की निःस्वार्थ सेवा से पीछे नहीं हटते हैं। उनके पास पैसे कौड़ी की इफरात है। ऐसों को दहेज की क्या दरकार। समाज में उनका खोटा सिक्का धड़ल्ले से चलता है। उनकी कृपा पात्र कन्याओं की ओर भी लोग आंख उठाने से डरते हैं। उनकी

पत्नी का नाम सुनते ही आंख बन्द करना एक सहज प्रतिक्रिया है। यह एक सुखद सत्य है कि भारत में ऐसे योग्य वरों की संख्या बढ़ती जा रही है। पहले हर शहर में तीन या चार होते थे। अब हर मौहल्ले में पांच-छः हैं। उनका रूतबा है। व्यक्तित्व है। हर थाने में फोटू है। ब्याह-बाजार में उनकी मांग दिनों-दिन तरक्की पर है। हर तरह से ऐसे 'आल-राऊन्डर' पति की हसरत किसे नहीं होगी।

जानकार बताते हैं कि सर्वगुण सम्पन्न होते हुए भी उनमें एक चारित्रिक दोष है। उनमें क्रोध का माद्दा कुछ ज्यादा है। हुक्म उदूली से वह परहेज करते हैं। खबर है कि गुस्से में वह खून-खच्चर से भी पीछे नहीं हटते। रौब रूतवे वाले उनमें कम हिंसक लोग भी हैं। काले धन से लैस इन सफेद पोशों से आयकर और सी.बी.आई. वालों की रोजी-रोटी चलती है। उनके दरबार में काले कोटवालों की भरमार है। इनके फोटू पत्र-पत्रिकाओं की अक्सर शोभा बढ़ाते हैं। यह स्वभाव से अहिंसक हैं। अपने हाथ से मक्खी भी नहीं मारते। पर क्या करें। कभी कभी ठेके पर हिंसा भी करवानी पड़ जाती है। ब्याह-बाजार में इनकी काफी डिमांड है। स्वयं को मधुमक्खी मानने वाली मादक चित्ताकर्षक कन्याएं ऐसे फूलों के आस-पास मंडराती हैं। पर उनको पता है। संसार में फूलों की कमी तो है नहीं। अन्तिम चयन सिर्फ मधुमक्खी का है।

इस तरह के वर सिर्फ एक मोर्चे पर मात खाते हैं। इन्हें खान-पान से वितृष्णा है। इनमें से कुछ वोट और नोट खाते हैं। ज्यादातर सिर्फ नोट। इन लोगों की पहचान आसानी से हो जाती है। इनके हाथ में सैल्यूलर फोन होता है। जेब में आयकर विभाग का नोटिस और दूसरी में सी.बी.आई. के 'अपने' अधिकारियों के फोन नम्बर। यह हमारे देश की नारियों का ही बूता है कि विविधता के इस अनंत जंगल से भी वह आदमी तलाश लेती है। इतना ही नहीं, उनके साथ ज्यादातर जिन्दगी भी गुजार देती हैं। □

चेतना बनाम उपचेतना

शंकर पुणतांबेकर

शंकर पुणतांबेकर निरंतर अपने आसपास घटित विसंगतियों के विरूद्ध आक्रामक रहते हैं। 'व्यंग्य अमरकोश' के माध्यम से उन्होंने व्यंग्य शब्दों का अद्‌भुत विवेचन किया है। आज के परिवेश में बढ़ रही अमानवीय मूल्यों के प्रति ललक पर शंकर पुणतांबेकर ने व्यंग्य किया है।

मुझमें संघर्ष चल रहा था। मेरी चेतना, उपचेतना का संघर्ष था यह।

मैं उपचेतना को चेतना पर हावी नहीं होने देना चाहता था, पर उपचेतना ऐसी बलवत्तर कि वह चेतना को धर दबोचती थी। वह नंगी और क्रूर जो थी जिसका मुकाबला सभ्य चेतना नहीं कर पाती थी।

मेरी चेतना छात्र से कहती, श्रम करो, डटकर परिश्रम करो। तुम्हें परीक्षा में नक़ल नहीं करनी है, अंक बढ़वाने के लिए परीक्षकों के पास नहीं पहुंचना है। तभी उपचेतना कह उठती है ... श्रम, श्रम अब मूर्ख छात्र करते हैं। नकल करो, डटकर नकल करो और आवश्यक हो तो खुल्लमखुल्ला परीक्षक के पास जाओ। गारंटी से ऊंचे अंक पाओगे।

लेकिन यह ग़लत है, मैं कहता हूं।

हां, ग़लत है, उपचेतना कहती है, पर आगे यही छात्र बढ़ रहा है।

क्या यह बढ़ जाना हमारा गिर जाना नहीं है?

चुप रहो। ज्यादा मत सोचो। मूर्ख हैं वे जो ज्यादा बुद्धिमान हैं।

मेरी चेतना बेरोज़गार से कहती, सब्र से काम लो। तुम्हें भी कभी काम मिलेगा। दुनिया में ईमान अभी भी शेष है। तभी उपचेतना कह उठती है ... सब्र, कैसा सब्र! सब्र से वे काम लेते हैं जो गंवार हैं। अब तुम्हें काम सब्र से नहीं सिफ़ारिश या रिश्वत से लेना है, जातिवाद से लेना है। बकवास ... बिलकुल बकवास यह कहना कि ईमान शेष है। ईमान यदि शेष है भी तो वह मरियल हालत में है।

तुम्हें दुनिया को और बिगाड़ना है या सुधारना है? मैं कहता हूं।

बेरोजगार को पहले अपना पेट तो भर लेने दो। उपचेतना कहती है।

यानी बेरोजगार पहले सिफ़ारिश-रिश्वत की बे-ईमानी से रोटी पक्की कर ले और फिर सिफ़ारिश-रिश्वत के ख़िलाफ़ ईमान पकड़े ... यही कहना चाहते हो न तुम?

उपचेतना मेरी बात सुन हंस देती है।

मेरी चेतना पड़ोसी से कहती, हवा के साथ बह मत जाओ। भेड़िया-धँसान मत बनो। तुम तो पढ़े-लिखे हो। समाज के लिए एक अच्छा आदर्श बन सकते हो। तभी उपचेतना कह उठती, आदर्श ... कौन-सा आदर्श। हवा के साथ बहोगे नहीं तो टिकोगे ही नहीं, भूखों मरोगे। हवा के साथ बहो और उसके साथ चलने वाला आदर्श—मुंह में राम और बगल में छुरी वाला आदर्श पकड़ो। तुम्हें यह आदर्श कहां-से-कहां पहुंचा देगा।

कहां-से-कहां पहुंचा देगा या जिंदगी से भटका देगा? मैं कहता हूं।

जिंदगी से क्या मतलब है तुम्हारा? उपचेतना सवाल करती है।

खाओ-पियो-मौज करो नहीं।

चुप रहो। भूखों मरते हो और कहते हो हम व्रतधारी हैं। उपचेतना चिढ़कर कहती है।

ऐसे ही संघर्ष के बीच उपचेतना ने मेरे सामने एक दिन तस्कर लाकर खड़ा किया।

लो इनसे मिलो तस्कर महोदय से। ये बड़े ऊंचे और प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं।

मैं तस्करों से घृणा करता हूं। मेरी चेतना ने कुछ नाराज होकर कहा और सवाल किया, मेरे यहां क्यों ले आये इन्हें?

विदेश जाना है? ये तुम्हारी मदद कर सकते हैं।

नहीं। मुझे विदेश नहीं जाना।

लड़के को डोनेशन देकर कहीं भरती करना है? ये तुम्हारी मदद करेंगे।

नहीं। मुझे भरती नहीं कराना है।

किसी मंत्री-वंत्री को मोल लेना है? ये तुम्हारी मदद को तैयार हैं।

नहीं। मुझे नहीं मोल लेना है।

मुझसे ऐसी नाराजगी क्यों? अब तस्कर बोला, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?

मेरा न बिगाड़ा हो, देश का तो बिगाड़ा है, मैंने कहा।

तो देश जिनके हाथ में है उन्हें मुझसे नाराज होना चाहिए। वे तो नहीं हैं।

तुम उन्हें खरीद सकते हो, मुझे नहीं।

इस पर तस्कर हंसकर बोला, मैं तुम्हें क्यों खरीदूंगा भला, नाकाम चीज़ को!

तुम्हें तो जेल में होना चाहिए। मैंने चिढ़कर कहा।

देखो भाई, उसने फिर हंसकर कहा, मैं तो तुम्हें ... तुम निरपराध को जेल भिजवा सकता हूं, पर तुम मुझे ... मुझ जालिम अपराधी को जेल नहीं भिजवा सकते। तुम क्या बड़ी-से-बड़ी हस्तियां नहीं भिजवा सकतीं।

तुम कैंसर हो जिस पर कोई बस नहीं, मैं बोला।

नहीं मेरे भाई नहीं, तस्कर ने कहा, कैंसर मैं नहीं कैंसर पूरी व्यवस्था है जिस पर तुम्हारा बस नहीं ... मैं तबसे खड़ा हूं। बैठने को नहीं कहोगे? चाय-वाय नहीं पिलाओगे?

मेरी समझ में नहीं आया तस्कर को मुझसे क्या लेना-देना है जो मेरे यहां चला आया।

चाय पीने के बाद उसने कहा, आओ मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें शहर घुमाऊँ। अपनी चेतन दुनिया से बाहर निकल हमारी जड़ दुनिया की चमक-दमक देखो ज़रा। जितनी जड़ इतनी ऊंची चमक-दमक।

मैं उसे मना करने को ही था कि उपचेतना बोली, घूम आओ क्या हर्ज है! घूमना ही तो है उसके साथ, उसके हाथों बिकना तो है नहीं।

मैं उसके साथ चल पड़ा। बड़ी आलीशान कार थी उसकी। जब अंदर बैठा तो क्षण-भर के लिए लगा मैं अपने देश से कहीं और आ गया हूं।

यह देखो यह स्टेडियम कितना शानदार है। तस्कर ने स्टेडियम कार में से ही दिखाते हुए कहा।

स्टेडियम शानदार हो और कॉलेज की बिल्डिंग मरियल यह मुझे पसंद नहीं था। तथापि मैंने कहा, हां शानदार है।

मैं उसकी कार में जो था, देश से कटा हुआ।

आगे बढ़े तो बताया कि उस स्टेडियम के लिए उसने चार करोड़ रूपया दिया था।

इसके बाद तस्कर ने मुझे एक थिएटर दिखाया जो शहर का अमीर थिएटर था। यह उसी ने बनवाया था और जो फ़िल्म उसमें चल रही थी उसी के पैसे से बनी थी।

मुझे लगा थिएटर काले पैसे के भव्य व्यक्तित्व की हीन रुचि को दरशा रही है।

उसने उसी के बनवाये हुए अस्पताल, पंचतारा होटल भी दिखाये।

अस्पताल में ऐसे लोगों का इलाज हो रहा था जो देश की बीमारियों के किटाणु थे। पंचतारा मुझे शोषितों की ज़िंदा कब्र लगी।

लौटते हुए तस्कर ने मुझे एक अध्यापक के बारे में बताया, वह खूब तेज है। मैं उसकी मदद करूंगा। वह बहुत बड़ा बनेगा।

यह सुन मेरी चेतना मुझसे कह उठी, नहीं-नहीं। तुम दुनिया भर के और काम करो—स्टेडियम खड़े करो, अस्पताल-पंचतारा खड़े करो, थिएटर-फिल्में बनवाओ, पर स्कूल-कॉलेज की ओर मत बढ़ो।

उस रात बिस्तरे पर पड़ने पर मेरी उपचेतना ने मुझे दिखाया, उस अध्यापक-बीज का एक विशाल कॉलेज बन गया है। सैकड़ों गुंडे छात्रों का उसमें निर्माण हो रहा है। अपवाद स्वरूप तिलक-सावरकर, सुभाष-पटेल जैसे भी कुछ छात्रों का।

तिलक-सुभाष जैसे छात्रों को भी बिदाई के समय कहा जाता है, कॉलेज-संस्थापक की प्रतिमा, उस तस्कर के पैर छुओ।

तभी मेरी चेतना कह उठती है, नहीं-नहीं, मैं यह नहीं होने दूंगा।

क्यों नहीं, क्यों नहीं होने दोगे? दूसरे ही क्षण उपचेतना ललकारती है।

चेतना-उपचेतना का यह संघर्ष आज भी मुझमें चल रहा है। □

भैंस, तुम कितनी खूबसूरत हो!

प्रेम जनमेजय

हिंदी व्यंग्य में प्रेम जनमेजय एक चिर परिचित हस्ताक्षर हैं। आठ व्यंग्य संकलन, तीन बाल साहित्य की कृतियों के अतिरिक्त व्यंग्य आलोचना पर गंभीरता से जुटे हैं। सतपुड़ा लोक संस्कृति परिषद् ने इस वर्ष का हरिशंकर परसाई पुरस्कार प्रेम जनमेजय को प्रदान किया है।

राधेलाल जी का सौंदर्य-बोध बड़ा विचित्र है। उनको पगुरा रही भैंस में भी सौंदर्य दिखाई दे जाता है, बशर्ते उसका स्वामी वी.आई.पी. हो। वह जब भी हमारे घर आते हैं, हमारे कबाड़ तक को सुंदर कर जाते हैं; क्योंकि हमसे उनके अनेक स्वार्थ सधते हैं। उनका सौंदर्य-वर्णन कभी निरर्थक नहीं होता है।

उस दिन, चुनाव जीतने के पश्चात किसी नेता की उपेक्षित जनता पर पड़ती ठंडी-दृष्टि-सी रविवार की निरर्थक सुबह थी और मैं सरकारी कर्मचारी-सा अजगर बना चारपाई पर बैठा मुफ्त की धूप सेंक रहा था। खिचड़ी बाल, बढ़ी हुई शेव, मुचड़ा हुआ कुर्ता-पाजामा और आंखों में लगी हुई गिद्द मेरी कुरूपता में चार चांद लगा रहे थे। पत्नी सुबह से हाई कमाण्ड बनी नहा लेने की बार-बार चेतावनी दे रही थी और मैं असंतुष्ट विधायक-सा कानों में रुई डाले अपना शक्ति-प्रदर्शन कर रहा था। गृह-युद्ध की पूरी संभावनाएं थीं कि इस बीच राधेलाल ने संयुक्त राष्ट्र संघ की तरह प्रवेश किया।

राधेलाल जी के मेरे घर में घुसते ही अपने शहर में मैं अजनबी हो गया। मेरे घर में शांति के कबूतर उड़ने लगे, कूड़े में से सुगंध उठने लगी, बच्चे पक्षियों-सा कलरव करने

लगे, पत्नी ने चहकने की भूमिका बना ली और मैं चेहरे पर नेताई किस्म की औपचारिक मुस्कान ले आया। मुझे देखते ही राधेलाल जी में किसी रीतिकालीन कवि की आत्मा जाग गई और उन्होंने मेरा नख-शिख सौंदर्य वर्णन आरम्भ कर दिया—'अरे वाह! प्रेम भाई कितने अच्छे लग रहे हैं, देखकर लगता है जैसे कोई नवाब अपने दीवाने खास में बैठा हो। बिल्कुल नेचुरल ब्यूटी लग रही है आपकी। "मेरे हुजूर" फिल्म में जितेंद्र की दाढ़ी भी ऐसी ही लगती है। आप भी मस्त तबीयत के आदमी हो, छुट्टी को पूरी तरह एन्ज्वॉय करते हो। और आपके कानों तक आए बाल कितने अच्छे लग रहे हैं, अभी इन्हें कटवाना मत। सच, मेरे पास कैमरा नहीं है, वरना फोटो उतार लेता और किसी भी प्रतियोगिता में पुरस्कार मार लेता।" राधेलाल जी का अन्तिम वाक्य सच से ओत-प्रोत था, कहीं का पुरस्कार मार लेना उनके बाएं हाथ का खेल है क्योंकि उनके रिश्तेदार किसी न किसी पुरस्कार समिति के सदस्य हैं। जैसे कुछ सज्जनों का जन्म भारत-भूमि में रिश्वत खाने के लिए हुआ है वैसे ही राधेलाल जी पुरस्कार हड़पने के लिए अवतरित हुए हैं। पुरस्कार तो कहते ही उसे हैं जो अपनों के द्वारा अपनों के लिए अपनों का होता है। खैर, इस समय राधेलाल जी को पुरस्कार से नहीं, मुझसे मतलब था, इसलिए वह मेरे रूप-सौंदर्य की प्रशंसा कर रहे थे। संतों को तो प्रशंसा करने से मतलब है, अब चाहे वह गधे की हो अथवा घोड़े की।

राधेलाल जी ने मेरे बिन नहाए रूप सौंदर्य की ऐसी प्रशंसा की कि मेरी पत्नी को मुझे नहाने के लिए पुनः कहने का साहस ही नहीं हुआ। अपितु जिस पत्नी ने बिना नहाए मुझे चाय न देने की, न्यायालय में गीता पर हाथ रखकर उठाई सी कसम-सी कसम खिलायी था, उसने राधेलाल के साथ मुझे भी चाय पीने का निमंत्रण दे डाला। चाय का निमंत्रण मिलते ही राधेलाल ने अपने सौंदर्य-मारक बाण का रूख मेरी पत्नी की ओर किया, क्योंकि इतवार की सुबह नाश्ते के समय खाली चाय पीकर टरक जाना उनकी प्रतिभा का अपमान था। राधेलाल मेरी पत्नी से बोले, "अरे भाभी जी, आपके हाथ की बनाई हुई चाय को भला मैं कैसे मना कर सकता हूं और मैं मना कर भी दूं तो आप बिना पिलाए जाने कहां देंगी। सच, आपके हाथ जैसी बढ़िया चाय पूरे मोहल्ले में कोई बनाकर दिखा तो दे। भाभी, आपकी चाय में कुछ जादू होता है। (ऐसा वह मोहल्ले की हर भाभी को कहते हैं।) प्लीज भाभी, चाय मैं खाली ही पियूंगा। आप इतनी प्लेंटे लगा देती हैं कि हमें शर्म आने लगती है। औरों के यहां जाओ तो चाय का एक कप ही मिल जाए तो गनीमत है। औरों की क्या कहें, हम अपने घर में आपको बिस्कुट के अलावा क्या खिला पाते हैं। अपनी अमृता तो इस मामले में भुलक्कड़ है, उसे पता ही नहीं रहता कि घर में बिस्कुट नमकीन खत्म हो गए हैं ... पर आपका भाभी जी कमाल है ..."

कोई अपनी पत्नी की तुलना में पर-नारी की प्रशंसा कर दे तो परनारी का गद्‌गद् होकर पकौड़े, सैंडविच, बिस्कुट, नमकीन आदि की प्लेंटें सजाना स्वाभाविक ही है। ऐसा

ही स्वाभाविक कृत्य मेरी पत्नी ने भी किया। प्लेटें सामने देखते ही राधेलाल को पत्नी-वियोग पीड़ित करने लगा। उन्होंने कामदेव की तरह तरकस से और सौंदर्य-बाण का प्रहार किया—"क्या भाभी, इतने बढ़िया पकौड़े और सैंडविच, सच आप कैसे बना लेती हैं। अमृता यहां होती तो आपसे कुछ सीख ही लेती, उसे तो बस सुबह से सफाई की पड़ी हुई है, न खुद चाय-नाश्ता किया है और न मुझे ही दिया है।" राधेलाल जी ने भूमिका बांध दी थी जिसके आधार पर अब मेरी पत्नी को संवाद बोलने थे—अरे भाई साहब, आप भी कमाल करते हैं, उनको काम में अकेला छोड़कर यहां बैठे हैं। जाइए, आपको मेरी कसम, उन्हें भी बुलाकर लाइए।"

जिस इतवार की सुबह को मैं अजगर की तरह काटना चाहता था, उसने मुझे ही काट दिया। राधेलाल की पत्नी के आगमन को जानकर मुझे उनके स्वागत में बेमन से नहाना और शेव करनी पड़ी। मेरी मुसीबतों का अभी यही अंत नहीं था। राधेलाल द्वारा बांचे गए प्रशंसा-पुराण से उन्हें अभी नाश्ता ही प्राप्त हुआ था, इतने तुच्छ कार्य के लिए राधेलाल दम्पति अपने सौंदर्य-बोध बाण का उपयोग नहीं करते हैं। उनका जन्म तो महान कार्यों के लिए हुआ है।

राधेलाल और उनकी पत्नी का हमारे घर में प्रवेश क्या हुआ, जैसे वसंत छा गया। ऋषि-मुनियों की तपस्याएं भंग होने लगीं तथा स्वार्थ के कदम थिरकने लगे। 'कितने अच्छे पकौड़े लग रहे हैं इस प्लेट में पड़े हुए। आपको याद है जब हम दो साल पहले आपके यहां आए थे और आपने मस्टर्ड कलर की साड़ी पहनी थी और प्रेम जी ने क्रीमिश रंग की कमीज। तब भी हम लोगों ने ऐसे ही पकौड़े खाए थे, हाय खाए थे न। सच, आप लोग कितने अच्छे हैं। (पकौड़ों ने हमें अच्छा बना दिया वरना हम भी आदमी थे काम के।) प्रेम जी जैसा मित्र तो इन्हें मिल ही नहीं सकता है। ये इनके साथ कहीं भी जाएं, मुझे कभी ऐतराज नहीं होता है। आपने हर संकट में हमारी सहायता की है। (यह दीगर बात है कि उन्होंने हर संकट में मुंह फेरा है।) आप तो मेरे भाई जैसे हैं। अब आप आज रात की ही बात देखिए, इन्हें किसी काम के लिए बीस हजार की जरूरत थी, (राधेलाल को किस काम के लिए बीस हजार की जरूरत थी, इसे छिपाना आवश्यक था क्योंकि वह हमारे अंतरंग मित्र हैं) अब मैंने इनसे कहा किसी और के आगे हाथ मत फैलाना, जब तक भाई साहब जैसे मित्र हैं। आप दे दें तो ठीक, वरना काम गया भाड़ में। सच, कितने अच्छे हैं आप लोग।"

मुझे और मेरी पत्नी को भावुक करने के लिए इतना ही बहुत था। "कितना अच्छा" बनने की प्रक्रिया में मैंने बीस हजार दो रुपए सैंकड़ा के हिसाब से उधार लिए और उनकी सेवा में अर्पित कर दिए।

भैंस के आगे बीन बजाओ तो वह पगुराएगी परंतु उसकी काली-काली चमड़ी की

प्रशंसा में चार चांद लगाओ तो वह दूध देगी ही। जो सुंदर है, आकर्षक है, उसकी प्रशंसा करोगे तो उसका अहं तुष्ट होगा, परंतु जो असुंदर है उसकी प्रशंसा करोगे तो वह आपका गुलाम हो जाएगा।

आपको भैंस समझकर आपके सौंदर्य का गान गाने वालों की कमी नहीं है। कुछ नेता के रूप में आते हैं, कुछ पूंजीपतियों के रूप में आते हैं तथा कुछ साहित्यिक आलोचकों के रूप में आते हैं। कुछ अर्थों में भैंस सुंदर होती है। देखने और समझने की बात यह है कि सौंदर्य-वर्णन करने की नीयत क्या है। संसार में ऐसे अनेक धनुर्धारी अब भी हैं जो शिखंडी को सामने रखकर अमूर्त बाण छोड़ते हैं।

आपकी भैंस ही नहीं, आप भी सुंदर हो सकते हैं, बशर्तें आपको उसका मूल्य न चुकाना पड़े। लोगों का सौंदर्य-बोध आजकल इतना भोथरा हो गया है कि वसंत की उपेक्षा हो जाती है और ऐसे में कोई धूर्त कोयल पतझड़ की प्रशंसा के गीत गाने लगे तो सावधान होना ही पड़ती है। □

दिलीप कुमार और अठन्नी

ज्ञान चतुर्वेदी

प्रसंग है बिन्नू को दिखलाए जाने का और इस सबके इन्चार्ज हैं लल्लन मामाजी। लल्लन मामा जी और छुट्टन के बीच में हो जाती है नोक-झोंक। ऐसी नोक-झोंक भारतीय परिवार का विशिष्ट अंग बन गयी है तथा इनसे जो हास्य-व्यंग्यात्मक स्थितियां पैदा होती हैं उसी का चित्रण ज्ञान चतुर्वेदी आजकल अपने लिखे जा रहे उपन्यास में कर रहे हैं। प्रस्तुत है उसी उपन्यास का एक अंश।

बिन्नू को दिखलाये जाने की प्राथमिक तैयारियां पूरी हो गई थीं :

तैयारियों के इनचार्ज लल्लन मामाजी थे, जो इस समय पूरी तन्मयता से बैठक में एक केलेन्डर ठीक से टांगने के निर्देश लल्ला को दे रहे थे। केलेन्डर परिवार के कला प्रेम की छाप लड़के वालों पर छोड़ेगा, इस विश्वास के तहत यह किया जा रहा था। जबलपुर की एक बीड़ी कंपनी के इस केलेंडर में, दिलीप कुमार अपनी बिखरी जुल्फों तथा झपकी आंखों के साथ तिरछी निगाहों से एक ओर देख रहा था। केलेंडर देखकर यह कह पाना कठिन था कि उस दिशा में क्या है, परंतु बीड़ी कंपनी तथा स्वयं लल्लन का विचार यह था कि उस ओर शेरछाप बीडी का एक बंडल रखा होगा, जिसे दिलीपकुमार हसरत से रख रहा था।

पड़ोसी गुरुचरन बनिये का जीर्णशीर्ण-सा सोफासेट भी बैठक में जमा दिया गया था। गुरुचरन बनिये की कस्बे में तीन-तीन दुकानें थीं, परंतु फिर भी वह अपने रहनसहन का

स्तर उठाने को तत्पर नहीं था, लल्लन मामाजी को इस बात का क्षोभ था। अब जैसा भी सोफा था; कुछ न कुछ होने से बहेतर था। छुट्टन, गुरुचरन के लफंगे पुत्र रम्मू के परम मित्रों में थे; वे ही रम्मू, जो चोरी छिपे बिन्नू को क्रीम-पावडर आदि देकर अपना पापी प्रेम का चक्कर चला रहे थे। बहुत मना करने पर भी, रम्मू स्वयं ही लल्ला के साथ सोफा घर तक पहुंचाने आए थे और पानी के बहाने से आंगन तक जाकर अम्मा को प्रणाम तक कर आए थे; पर बिन्नू को नहीं देख पाए थे।

लल्ला जब मामाजी के निर्देशन में केलेंडर टांग रहे थे, तभी छुट्टन बैठक में पधारे और कुटिल मुस्कान के साथ, रुचिपूर्वक केलेंडर को देखने लगे।

'कैसा है?' लल्लन मामाजी ने गर्वपूर्वक पूछा।

'आजकल जमाना धर्मेंद्र का है,' छुट्टन ने तिरस्कार के साथ कहा।

'किसका?'

'धर्मेंद्र का—क्या मामाजी, आपने उसकी फूल और पत्थर देखी कि नहीं?' छुट्टन ने पूछा और साथ ही विस्तारपूर्वक जनता की बदलती रुचि को रेखांकित करते हुए दिलीपकुमार के केलेंडर को खारिज कर दिया। छुट्टन ने बताया, 'अब दिलीपकुमार को कोई नहीं भजता मामाजी, 'लीडर' कैसी पिटी? हम तो कहते हैं कि आदमी को अपना बुढ़ापा भी देखना चाहिए। जमाना अब धर्मेंद्र का है मामाजी। आप 'फूल-पत्थर' देखिए। दस दिन पहले हम झांसी में देख आए और आप झांसी में रहकर भी कहते हैं कौन धर्मेंद्र? क्या बॉडी है उसकी ...'

'बॉडी तो हमारे लल्ला की भी कौन सी कम है, पर वे इसी से दिलीपकुमार तो न बन जाएंगे, भैय्या, लल्लन ने तर्क दिया।

'बॉडी अकेली की बात कौन झकलट कर रहा है? शक्ल भी चाहिए।

'छोटे भाई के लिए ऐसा कहते हो?' मामाजी ने धिक्कारा।

'छोटे भाई से हमें बड़ा प्रेम है। कहिए, तो लल्ला का अभी चुम्मा लेकर बताएं। पर वह तो आपने एक बात कही, तो हमने भी कही।'

'इसी लल्ला को हमने परी जैसी लड़की न दिलाई, तो कहना' मामाजी ने दावा किया।

'अब तक आपकी तय करवाई इतनी शादियां हमने देखीं; परन्तु परी तो एक न दिखी',

'पर लल्ला की परी से करवाएंगे।'

'हमें भी एक दो दिलवा देना।'

'ये ही लच्छन रहे, तो तुम्हें कुछ न मिलेगा ...''

'अब आप फालतू ही रिसा रहे हैं।'

'बात ही ऐसी करते हो तुम।'

'हमने तो एक बात कही कि दिलीपकुमार को अब कोई टके को नहीं भजता। पर केलेंडर टांगने में वैसे बुराई भी कोई नहीं। लड़के को जैसा भी लगे, पर उसके बाप को

पसंद आएगा', छुट्टन ने बीच का समझौतावादी रूख अपनाते हुए कहा।

जब यह बहस चल रही थी, तब तक लल्ला ने सोफे की कुर्सी पर चढ़कर केलेंडर दीवार पर लटका दिया। वे उतरने लगे, तो सोफे से तड़ाक की आवाज आई, यद्यपि कुछ भी टूटा नहीं।

'तोड़ मत देना यार, मंगते का माल है', छुट्टन ने आगाह किया।

'ऐसे कैसे तोड़ देंगे', लल्ला ने रिसाकर कहा।

'अपना कसरती बदन देखो, फिर कुर्सी पर चढ़ो।'

'तुम्हारा धर्मेंद्र भी सोफे पर न बैठा होता होगा' मामाजी ने मौका देखकर तर्क दिया।

'अब आप गाली गलौज पर उतर आए हैं, मामाजी। अब दिलीपकुमार पिट गया है, तो बताइए इसमें हमारा या धर्मेंद्र का क्या दोष? लिखकर रख लीजिए कि अगले केलेण्डर पर ये आपके बीड़ी वाले भी धर्मेंद्र की फोटू ही छापेंगे।'

मामा-भांजे की सनातन नोकझोंक चल रही थी और साथ-साथ बैठक की सजावट को अंतिम रूप भी दिया जा रहा था। कई सालों की न पुती भदरंग दीवारें, जैसा भी था वैसा सोफा दिलीपकुमार वाला विवादास्पद केलेंडर, कांच के ग्लास में ठूंसकर भरे गेंदों के फूलों का गुलदत्ता, एक कोने में पड़े पुराने तख्त पर बिछी चमकीली शोलापुरी चादर, जो ऐसे नाजुक अवसरों के लिए मामा सहेजकर अपनी पेटी में रखा करते हैं, तथा बैठक के दरवाजे पर लटका छापेदार पर्दा जिसे भी मामा ने अपनी पेटी से निकालकर दिया है—ये सारी चीजें मिलकर खासा भव्य माहौल पैदा कर रहे थे, ऐसा मामाजी का विचार था। उन्होंने बैठक के बीच में खड़े होकर सारे दृश्य पर विहंगम दृष्टि डालते हुए छुट्टन से पूछा—

'कैसी झांकी है?'

'ठीक ही है।' छुट्टन बोले।

'ठीक ही है' का क्या मतलब?'

'मतलब यही कि ठीक ही है' और क्या? पर हम तो कुछ और ही सोच रहे थे।'

'हम भी सुनें' मामाजी चिढ़कर बोले।

'आपको सुनाने के लिए सोच रहे थे।'

'सुनाइये।'

'अच्छा मामाजी, मान लो इस घर में आपने परी ला भी दी, तो वह इस घर में कैसी लगेगी? छुट्टन ने काल्पनिक, पर तीखा प्रश्न पूछा।

'क्यों? क्या कमी है इस घर में?'

'चलिये, कमी न सही; परन्तु परी के लायक तो खैर नहीं ही है। फिर यह भी सोचने की बात है कि लल्ला के साथ परी कैसी सजेगी?'

'अच्छी लगेगी, क्या बुराई है अपने लल्ला में?

'अब हमें तो लल्ला अच्छे लगते हैं, परन्तु परी को भी लगें, तब है।'

'न लगे, यहां परी से पूछता कौन है।'

'अच्छा, बताइये मामाजी, परी आत्महत्या तो नहीं करती न?

'क्यों?'

'करती होगी, तो यहां आकर अवश्य कर लेगी।'

'तुमसे मिलकर?'

छुट्टन इस छेड़छाड़ को और नहीं खींच पाए, क्योंकि तब तक न जाने कहां से गुच्चन भाई साहब नमूदार हुए और एक जोरदार रहपट छुट्टन के गाल पर जड़ते हुए बोले, 'बुजुर्गों से बात करने की तमीज नहीं है तुम्हें' छुट्टन अप्रत्यासित लप्पड़ के असर में घूमकर सोफे पर गिरे। बीड़ी का बंडल जेब से निकलकर गिर गया। छुट्टन ने धूल झाड़ते हुए उठकर यूं जताया, मानो यह दैनिक कार्य हो और झापड़ से उनकी बेइज्जती नहीं, वरन इज्जत ही बढ़ी हो।'

छुट्टन आराम से उठे और बोले, 'देखकर मारिये भैया; अभी सोफा टूट जाता, फिर?'

तब तक गुच्चन भैय्या ने जमीन पर पड़ा हुआ बीड़ी का बंडल उठा लिया था। बंडल की ओर इशारा करके, एक और रहपट रसीद करने की भंगिमा में छुट्टन की ओर बढ़ते हुए उन्होंने पूछा—

'तुमने फिर से बीड़ी शुरु कर दी?'

'यह हमारी नहीं है।'

'फिर क्या हमारी है?'

'मामाजी की है। अभी हमसे इन्होंने ही मंगवाई थी। अरे, बोलिए न मामाजी, जब फालतू ही धुनकवा देंगे, तब बोल फूटेंगे क्या ...'

'हमारा मारना फालतू ही तो है। तुम सुधरने से रहे।'

तब तक मामाजी ने बीच में आकर बंडल हथिया लिया और गुच्चन को अलग ले जाकर कुछ खुसुर-फुसुर करने लगे। जब तक बड़ों के बीच यह शिखरवार्ता जारी थी, छुट्टन लल्ला के पास पहुंच गए। लल्ला बड़े मितभाषी तथा चुप्पा टाइप के थे। उनके शौक थे पहलवानी, पटेबाजी, कड़वे तेल से शरीर के समस्त अंगों की मालिश, अखाड़ा गोड़ना, घर का भारी सामान अकेले ही उठाकर यहां से वहां धरना (यथा गेंहू के भारी बोरे को अकेले ही बैलगाड़ी से उतारकर अंदर के कमरे में पहुंचा देना), अंकुरित चने चबाना, चढ़ी नदी में कूदकर तैरना, देशी कट्टे की तलाश करना, लाठी तथा मुगदर घुमाना, ब्रह्मचर्य पालन के प्रति अतिरिक्त सतर्क रहते हुए भी सेक्स विषयक ज्ञान की चुपचाप खोज करते रहना और परिवार की इज्जत के लिए जान भी खेल जाने की बातें करना। अभी भी, इतनी बहस-छेड़छाड़? मगर पिटाई से निस्पृह वे बैठक का परदा ठीक कर रहे थे। छुट्टन के पास पहुंचकर पूछने लगे—

'अठन्नी है क्या?'

'नहीं तो, क्यों?'

'किराये की साइकिल उठानी पड़ेगी, तालबेंहट वालों को लेने स्टेशन पर जाना है यार।'

'पैदल निकल जाइए, पास ही तो है।'

'पैदल पहुंच गए, तो तालबेंहटिए जान जाएंगें कि हम नंगे हैं।'

'वहां से उन्हीं के साथ तांगे पर आ जाइयेगा।'

'यार, नई साइकिल पर तांगे के आगे-आगे आने का जलवा कुछ और ही है। तुम नहीं समझोगे।'

'पर हमारे पास अठन्नी नहीं है।'

'होती तो तुम चने खा लेते ... तुम भागकर अंदर जाओ, अम्मा से ले आओ।'

हम चले जाते हैं स्टेशन, पैदल ...' लल्ला ने प्रस्ताव रखा।

छुट्टन गुस्सा होकर बड़बड़ाने लगे, 'वहां अखाड़ा नहीं गोड़ना है, बातचीत करनी होगी, इन तालबेंहट वालों से बात करना ठठ्ठा समझते हो क्या? रास्ते भर कोशिश रहेगी कि कौन किसको कितना बना सकता है। वे अपने खानदान की झाडेंगे, अपने लड़के की झांकी खींचेंगे कि है तो स्टेशन मास्टर, पर कलेक्टरी की परीक्षा में बैठ रहा है और अपने ताऊजी के बारे में बतायेंगे जो कहीं की जज्जी में सेसन जल होगा। तब इधर से भी तो कोई झाड़ने वाला चाहिए होगा न, जो हमारे परिवार की झांकी सेट कर दे। तुम कर सको, तो चले जाओ और अठन्नी बचा लो, बाद में गर्म करके कहीं चिपका लेना।'

'वह तो खैर आपको ही जाना है, गुच्चन भैया ने भी यही कहा है' लल्ला ने बहस टालकर कहा।

'फिर लपककर अम्मा से एक रुपया ला दो।' छुट्टन उत्साहित हो बोले।

'अभी तो आप अठन्नी मांग रहे थे?'

'अठन्नी की बरफ भी तो लानी है, लौटते में।'

'आप ही मांग लाओ अम्मा से।'

'यार, अम्मा हमें कभी न देंगी।'

'अम्मा के पास वैसे भी पैसे कहां रहते हैं?'

'रहते हैं, बहुत रहते हैं, तू मांग कर तो ला।'

लल्ला हारकर अंदर चले गए। फिर गुच्चन भी छुट्टन को घूरते अंदर गए।

मामाजी ने दीवार पर टंगी बहुत पुरानी घड़ी की ओर देखा, 'दस बज रहे हैं, ग्यारह बजे तो मानिकपुर पैसिंजर लग जाती है, निकल लो, छुट्टन अबेर न हो।'

'निकल जायेंगे, पहले वह बंडल तो निकालिए अंटी से।'

मामाजी ने तीन-चार बीड़ियां निकालकर, शेष बंडल छुट्टन को देकर उन्हें ठेला, 'अब जाओ।'

'जाते हैं, जरा लल्ला को आ जाने दो', छुट्टन ने कहा और कुटिल मुस्कान के साथ दिलीप कुमार की तस्वीर को गौर से देखने लगे। देर तक, एकटक देखने के बाद वे बोले—'एक दम बंदर टाइप शक्ल है, क्यों मामाजी?'

कोई जवाब नहीं मिला।

छुट्टन ने पलटकर देखा।

मामाजी भी जा चुके थे। कमरे में छुट्टन अकेले रह गए थे।

वैसे अकेले भी क्यों कहें, साथ में दिलीपकुमार भी तो था। □

तेरे वादे पे जिए हम

डॉ. मधुसूदन पाटिल

'व्यंग्य विविधा' के संपादक के रूप में मधुसूदन पाटिल हिंदी कोष पर गंभीर चिंतन प्रस्तुत कर रहे हैं। अपने व्यंग्य संकलन 'देखन में छोटन लगे' के शीर्षक की सार्थकता को सिद्ध करते हुए उनकी रचनाएं अक्सर तीव्र प्रहार करती हैं। वादों की घुट्टी बचपन से ही मनुष्य पीना शुरु कर देता है। देखें प्रस्तुत रचना में पाटिल जी कौन सी घुट्टी पिला रहे हैं।

हमारे धर्मशास्त्री कहते हैं कि यह गोल धरती शेषनाग के फन पर टिकी है पर मेरा यह विनम्र विचार है कि हमारे महान देश की धरती गोलमोल वादों पर टिकी है। खगोलशास्त्री कहते हैं कि धरती सूर्य के चारों ओर अपनी धुरी पर घूमती है, हमारा आधुनिक जीवन भी वादों की धुरी पर पूरी रफ्तार से घूम रहा है, और घूमता ही जाता है। ज्ञानी-ध्यानी कहते हैं परमात्मा का अस्तित्व है लेकिन पापियों को नजर नहीं आता उसी तरह वादों का भी सूक्ष्म अस्तित्व है पर नास्तिकों को नज़र नहीं आता। जैसे हमें रंगीन फिल्मी चित्र दिखाई देते हैं, रील नजर नहीं आती। नियति नटी के कार्यकलाप जैसे चुपचाप चलते रहते हैं वैसे ही वादों की विशाल मशीन ऑटोमैटिक चलती रहती है और सामाजिक जीवन को संचालित करती रहती है। जैसे संसार सत्य भी है और मिथ्या भी वैसे ही हमारा वादों भरा जीवन सत्य भी है और मिथ्या भी।

प्राचीनकाल में हमारे ऋषिमुनि जरा अलौकिक किस्म के वादे वितरित करते आये हैं। उनके वादे रूपमती रानियों के लिए विशेष रूप से आरक्षित रहते थे। अभागनों को

सौभाग्यवती होने का और फूलवती को फलवती होने का वादा उन्हें फूल-फल देकर पूरा करते थे। राजाओं को महाराजा बनाने का वादा देकर उन्हें प्रसन्न करते थे। आम आदमी के हिस्से तब भी उपदेश ही आते थे। आधुनिक युग के स्वामी नेताओं को सत्ता का वादा देते हैं और बदले में उनसे कमांडो सुरक्षा पाते हैं। मॉड के स्वामी मैड जनता को ज्ञान, भक्ति, योग के वादे, प्रसाद के रूप में बांटते हैं। जनता को माया त्यागने का वादा देते हैं, जनता की त्यागी हुई माया से अपने स्वर्गाश्रमों को फाइवस्टार सुख-सुविधाओं से सम्पन्न करते हैं।

आजकल हमारी जीवन-यात्रा प्यारे-प्यारे वादों से शुरू होती है। मां-बाप जन्मघुट्टी के साथ ही वादों की घुट्टी पिलाकर पालते-पोसते हैं। चांदी का चम्मच मुंह में लिए पैदा होने वाले बच्चों को उनके मां-बाप चम्मच-चम्मच सुनहरा भविष्य पिलाते रहते हैं। जिन मांओं के पास देने को दूध नहीं है वे अपने रोते पप्पुओं को झुनझुने पकड़ाती हैं। कुछ लालीपॉप देते हैं कि चूसे जाओ, कुछ चूइंग गम 'एफोर्ड' करते हैं। आम आदमी अपने बच्चों को खिलौने, कपड़े, मेले त्यौहारों के बाद, खर्चों की तरह किश्तों में देकर बहकाते रहते हैं।

सर्वाधिक रंगीन वादे होते हैं प्रेम करने की उम्र में जो टी.वी. और फिल्म की कृपा से कुछ विशेष रंगीन हो गये हैं। प्रेमी प्रेमिकाओं के वादे फिल्मी लाइन पर 'सुपरफास्ट' दौड़ते हैं। साथ जियेंगे साथ मरेंगे के वादे, दो जिस्म मगर इक जान होने के वादे, चांद सितारों से मांग सजाने के वादे, आसमान से ताजे-ताजे तारे तोड़ लाने के वादे, चांद पर जाने के वादे, पहाड़ काट कर दूध की नदी लाने के फरहदी वादे, और भी बहुत कुछ। फिर बीच में शादी की जंजीर बांध दी जाती है। सात जनम साथ निभाने के वादे दहेज के पहले झटके में ही चूर-चूर हो जाते हैं। शादी से पहले सारे जमाने की खुशियां लाने के वादे पहली तनखा में ही आरती के कपूर की तरह निस्तेज व निर्गन्ध हो जाते हैं। बचे-खुचे मासिक किश्तों में धारावाहिक की तरह खिंचते चले जाते हैं।

हमारे देश की धरती जैसे बहुरंगी संस्कृतियों का संगम है वैसे ही आसमान भी मौसम के अनुरूप रंगबिरंगी रूप धारण करता है, क्षण-क्षण में पार्टी के रंगों की तरह रंग बदलता रहता है, फिर कुछ क्षण में खादी की तरह सफेद हो जाता है। साफ आसमान वास्तव में शून्य ही तो है। यहां किस्म-किस्म के वादे हैं और भांति-भांति के वादा-फरोश हैं। यहां सबके वादों पर 'सब ठीक हो जाएगा' का गीता दर्शन सवार है। सबके वादों पर 'मैं हूं न' जैसे फिल्मी डायलॉग की अदृश्य किन्तु स्थायी छाया है। अफसर के वादे की सड़क दूसरी बरसात के पहले ही टूट जाती है। सफाई के वादे गटर में बह जाते हैं। कचहरी कर्मचारियों के वादों से किसानों का जन्म-जन्म के फेरे में विश्वास पक्का होता जाता है। डॉक्टर तीन दिन में ठीक करने का वादा देकर महीने भर टालू मिक्सचर पिलाता रहता है। ट्यूशन मास्टर का वादा महानालायक को फर्स्ट क्लास दिलाने का होता है, जो छःमाही परीक्षा परिणाम में ही गायब हो जाता है। प्राचार्य और कुलपति के शिक्षा स्तर को उठाने के वादे की भ्रूणहत्या

हो जाती है। नेताओं और अपराधकर्मियों के रिश्ते की याद दिलाकर पुलिसिया वादे की शामत कोई आमंत्रित नहीं करना चाहता। जन्म मरण के फेरे से एक बार गलती से छुटकारा हो सकता है पर अदालती वादों के चक्कर में एक बार आये कि बार-बार आए। यहां अलग-अलग रेट के वादों की दुकानें होती हैं। स्टॅम्प पेपर के वादे, अफिडेविट के प्रमाणित वादे, टंकित वादे, वकीलों द्वारा सौगंधित वादे, अधिकारियों द्वारा सत्यापित-प्रतिसत्यापित वादे, अखण्ड-अनंत वादे। फाइलों के ढेरों में दम तोड़ते वादे, सांस की तरह आखरी सांस तक पीछा न छोड़ते वादे। आजीवन ही नहीं मरणोपरांत पुरस्कार की भांति चिपके वादे।

व्यापारियों के लुभावने वादे बाहर से सस्ते पर भीतर से महंगे होते हैं। विज्ञापनों की गारण्टी-वारण्टी से ललचाऊ वादे एक बार ग्राहक को पटा लेते हैं पर जीवन भर रोने के लिए छोड़ देते हैं। विज्ञापनों की मोहक मुस्कानें गरीब से गरीब आदमी का संयम वैसे ही तोड़ देती हैं जैसे इंद्र की अप्सराएं एक ही मुस्कान में बड़े-बड़े तपस्वी की तपस्या भंग कर देती थीं।

नेता और वादे का संबंध दो पवित्र आत्माओं का संबंध की तरह सूक्ष्म और वायवीय होता है। नेताओं के वादे अलादीन का चिराग या जादू की छड़ी की तरह असरदार होते हैं। चुनाव के अवसर पर नेताई वादों की गंगा राजधानी से निकलकर पोस्टर के माध्यम से गांव-गांव तक पहुंचाई जाती है। पार्टी ऑफिस में पके बूर के पुए अखबारों की थाली में जनता को परोसे जाते हैं। वादों का लार्ज स्केल पर उत्पादन व वितरण करने के लिए स्थान-स्थान पर स्माल स्केल यूनिट स्थापित किये जाते हैं। जनता की बढ़ती आबादी के अनुरूप नेता व उनकी पार्टियों की भी संख्या बढ़ती जाती है। प्यासी जनता को कोला पिलाने का वादा, सड़क मांगने वाली जनता को हवाई सफर का वादा, रोटी-कपड़ा-मकान के लिए रोती जनता को सौंदर्य प्रतियोगिता, माइकल जैक्सन शो, बीसियों चैनलों का मनोरंजन देने का वादा कुछ ठोस राजनीतिक वादों के नमूने हैं।

चुनाव से पहले वादों के सूत्र ईजाद होते हैं, बम-पटाखे बनते हैं। घोषणा-पत्रों से वादों की बरसाती नहीं उमड़ पड़ती है। चुनाव जीतकर राजधानी पहुंचते ही वादों की बाढ़ उतर जाती है, वादों-नारों के बरसाती नाले सूख जाते हैं। पांच साल की उम्र पूरी करने का सपने देखने वाले वादे क्षणभंगुर, पानी केरे बुदबुदे साबित हो जाते हैं। चुनाव के बाद वादे दीवारों से टूटे उपले की तरह चिपके रह जाते हैं। पुरानी पंचवर्षीय घोषणाएं अब कोल्ड स्टोरेज की बारहमासी ताजी सब्जी की तरह नित ताजी बनी रहती हैं। आज महान नेता वे हैं, जिन्होंने भारतीय संस्कृति की उदारता के साथ पाश्चात्य संस्कृति के 'फरगिव एण्ड फरगेट' का समन्वय कर दिया है। वह जनता की रग-रग से वाकिफ हैं—काजल की काली कोठरी से दागदार होकर भी बेदाग निकलने का डिटर्जेंट उसके पास है—वादा झूठा कर लिया, चलिए तसल्ली हो गई, है जरा सी बात खुश करना दिले नाशाद का।

'वादा' शायरों के लिए बैठे ठाले चिंतन का विषय नहीं रहा बल्कि जीने मरने का

सवाल बनकर उभरा। एक शायर को जीना मुश्किल हो रहा था, लेकिन जब वादा मिला तो मरना भी मुश्किल हो गया—

'वादा करके और भी आफत में डाला आपने,
जिन्दगी मुश्किल थी, अब मरना भी मुश्किल हो गया।'

'वादे' पर ऐतबार करें, न करें यह भी शायरों की अपनी अनुभूमि और अपनी अभिव्यक्ति पर निर्भर करता है। मोमिन ऐतबार करते हैं तो कयामत का इंतजार करते हैं—

'गजब किया तेरे वादे पे ऐतबार किया,
तमाम रात कयामत का इंतजार किया।'

अदब के वली गालिब का यह शेर प्यार और परमात्मा की सच्चाई का कैप्सूल है—

'तेरे वादे पे जिए हम, तो ये जान झूठ जाना,
कि खुशी से मर न जाते, अगर ऐतबार होता।'

वादामृत पी-पीकर जीती हिन्दुस्तान की जनता की जै-जै, तुम्हारी भी जै-जै, हमारी भी जै-जै। हिन्दुस्तानी वादागरों की अमरबेल रहे। मुझे उम्मीद है मेरी इस वादागिरी से प्रसन्न होकर भगवान मुझे स्वर्ग में एक सीट रिजर्व करने का वादा अवश्य देंगे, अन्यथा करोड़ों नर्कवासियों की तरह वेटिंग लिस्ट में हम भी लटके पड़े हैं—आमीन □

वसंत आये कि नहीं आये!

पूरन सरमा

एक समय था जब वसंत आता था तो पूरा प्रदेश महक जाता था। वसंत मानव की उल्लसित भावनाओं का प्रतीक बनकर आता था। प्रदूषण के धुएं में शहरी वसंत की क्या स्थिति है इसका चित्रण युवा व्यंग्यकार पूरन सरमा कर रहे हैं।

वैसे भी वसंत इस बार देर से आया है, उसका कारण प्रकृति ही है—लेकिन जीवन में आने वाले वसंत का तो अता-पता ही नहीं है कि वह आयेगा या नहीं? वैसे वसंत की चाहना में उसकी बाट जोहने वाले भी रहे ही कहां हैं। यों वसंत हर साल पेड़-पत्तों-फूलों तथा पूरे उपवन में जोरों से खिलखिलाता है, लेकिन हम इतने बेपरवाह की ध्यान ही नहीं दे पाते। हम अपने ड्राइंग रूप में बैठे भौतिक सुख-सुविधाओं में तलाशते हैं अपना वसंत। वसंत ने आना नहीं छोड़ा है। देर हो या सबेर वह जरूर आता है—उस ठूंठ में भी, जो पूरे साल उदासीन और उपेक्षित सा खड़ा रहा था। प्ररुआ की पछुआ जब वातावरण को छूने लगती है—तब हल्की-सी बूंदा-बांदी होती है—जो खेतों की फसलों का प्राण है और इसी के बाद आता है इठलाता-बलखाता यौवन के नशे में मदमाता वसंत, जो प्रकृति और मनुष्य के रोम-रोम को पुलकित कर डालता है। लेकिन हमारे अहसास बदल से गये हैं। हम नयी चकाचौंध में फंसे उसकी आहट को नहीं सुन पाते हैं।

माघ मास की हल्की ठिठुरन का एक नाम भी है वसंत। यही वासंती आभास फागुन के लगते-लगते यौवन की दहलीज चढ़ने लगता है तथा वसंत के प्रसंग बदलने लगते हैं उत्सवों में। ये उत्सव कई नामों से जाने गये। फागुनोत्सव से लेकर मदनोत्सव का महोत्सव।

हम गांवों से दौड़ते-दौड़ते महानगरों की चौड़ी सपाट सड़कों पर हांफ रहे हैं और फिर भी दौड़े जा रहे हैं एक अंधी दौड़ में। फुरसत ही कहां है हमें। हमारे अपने मंगल चिह्न अब रंगीन टीवी-शानदार भवनों-कारों-सोफों तथा वातानुकूलित सुविधाओं के विस्तार में डूबे हैं और वसंत इसी ऊहापोह में हमसे कहीं दूर निकलकर बिछुड़ गया है। दिलचस्प तो यह है कि हमें इसका मलाल नहीं, सोचने का सवाल नहीं और प्रकृति से तालमेल का भाव नहीं। फल यही तो होगा कि जंगलों का विनाश तथा पर्यावरण का नाश तथा वन्य जीवन का सत्यानाश! फिर भला वसंत आएगा कहां? वह ड्राइंग रूम में तो आकर बैठेगा नहीं। उसके तो अपने स्थान हैं जहां वह खिलता-खिलखिलाता है।

नदियों का जल ही नहीं मन का भी लगभग सूखा हैं। मन की नदी सूखने का परिणाम कितना घातक होता है—हमें पता ही नहीं है। परिणाम के तौर पर दहेज के यातना शिविर में वसंत के पांव जल जाते हैं और हमारे संस्कार, संस्कृति और सहकार, सहयोग एवं प्रेम के राग आप ही दम तोड़ने लगते हैं। तमाशा रोज का है घोटाला दर घोटाला। खुशहाली का समाजशास्त्र छद्म से रचते हैं। करोड़ों की हेरा-फेरी से बटोरा वैभव क्षण भर में पतझड़ की तरह झर जाता है। जांचों-कोर्ट-कचहरियों तथा जेल के सीखचों में भला कैसे मिलेगा वसंत। वह तो खुले मैदानों उपवनों की शोभा है, जिसे हम खोजते हैं अपने अगौरवीकरणों की चालबाजियों में। इससे तो ठीक था हम आदमी नहीं कोई चौपाये होते—जिसे बुद्धि नहीं होती और उसी से जीविका जुटाकर जीवन जी लेते। हमारे जीवन के लक्ष्य इतने भर रह गये हैं कि हम एक-दूसरे को नीचा दिखायें और अपने को ठहरायें सर्वशक्तिमान।

अभी न तो रात है और न दिन ही ढला है उजास बाकी है यहां-वहां कोनों में। उसे ही समेट लो अन्यथा सारा सामान हमने विनाश का तो जुटाया ही है। इस नये गांव में नयी पहचान की जरूरत है—जिसकी अपनी निजी प्रसन्नताएं थीं। जागने का, सोचने का और समझने का यही समय भी है। अन्यथा वसंत छूट गया है हमसे कोसों दूर। जलते हुए दीप जब बुझते हैं तो अंधकार को बहुत खुशी होती है—यही तम अट्टहास कर हमारी नादानियों की खिल्ली उड़ा रहा है और इतिहास तो जब सवाल करेगा तब हम मौन और मूक होंगे। उसके सवालों का कोई जवाब नहीं होगा हमारे पास। इतिहास का डर, पीढ़ी बरगलाने का भय तथा आतंक का खौफ सब किसी चमत्कारिक ढंग से विलोपित है तो फिर डरिये नहीं, स्वयं को तैयार रखिए अपने ही बनाए यातना शिविरों में बंद हो जाने को। क्योंकि वसंत तो आए कि नहीं आए! □

कोई मरै हमहिं दुख नाहीं

गिरीश पंकज

बड़े नेता की मृत्यु पर अक्सर देश को शोक मनाने के लिए अवकाश दे दिया जाता है। इस अवकाश का प्रयोग ज्ञानीजन किस रूप में करते हैं, इसे हास्य-व्यंग्य शैली में बता रहे हैं युवा व्यंग्य-लेखक गिरीश पंकज।

मैंने दुखी होकर मित्र को सूचना दी—"देश के जाने-माने नेता: स्वर्गवासी हो गए।" इतना सुनना था कि मित्र के चेहरे पर खुशी की रेखाएं उभर आयीं। कहने लगा—"सच? मतलब ये हुआ कि कल अपुन की छुट्टी। मज़ा आ गया, पार्टनर! कल शुक्रवार है, परसों शनिवार, और रविवार तो खैर है ही। तीन दिन की छुट्टी। काश, हमारे नेता इसी तरह हम लोगों की सुविधा का ध्यान रखते।"

मैं भड़क गया—"ये क्या मज़ाक है? देश का महान पूत चल बसा और तुम हो कि संवेदना व्यक्त करने के बजाय छुट्टी की याद करके खुश हो रहे हो? शर्म आनी चाहिए।

मित्र हंस पड़ा—"शर्म! काहे की शर्म! जो यथार्थ है, उसे स्वीकारने में कैसी शर्म! मैं नहीं, पूरा देश इसी तरह की आकस्मिक छुट्टियों की तलाश में रहता है। किसी की जयंती पर छुट्टी तो किसी की मृत्यु पर छुट्टी! मैं तो कहता हूं, जितने भी घोषित महापुरुष हैं, सबके सम्मान में छुट्टी मिलनी चाहिए। किसी के साथ पक्षपात नहीं होना चाहिए। अपना तो दर्शन है प्यारे—

कोई मरै हमहिं दुख नाहीं
छुट्टी मिले मजा आ जाही।।

मैंने कहा—"वाह प्यारे, तुलसीदास जी की चौपाई की पैगडी बना दी! मतलब ये कि तुम्हारे भीतर का शैतान यानी कि कवि जाग गया! बड़े खतरनाक आइटम हो भैये?"

मित्र बोले—"ठीक पहचाना, भाई ने भाई को जाना। दरअसल, जब-जब कोई दुखद घटना होती है और मेरा दिल 'अरे बाबा, अरे बाबा' करने लगता है तो कविता अपने आप बाहर निकल पड़ती है। हम उन वियोगी कवियों की तरह नहीं है, जिन की आह से गान उपजता है। उपजता होगा कभी, हम तो अवसरवादी-दौर के कवि हैं। हमारा दर्शन है—

भोगी होगा छुटभैया कवि,
हर्ष से निकला होगा छंद।
उमड़कर दारू से धड़-धड़,
बही होगी कविता-दुर्गंध।।

बाप रे! बहुत ही खतरनाक आदमी उर्फ कवि है, हमारा मित्र। मुझे लगा, इसकी लंबी-लंबी प्रतिक्रिया तो मिल गयी, चलो कुछ और आत्माओं से रू-ब-रू हो लें।

एक सरकारी कर्मचारी मिल गए। नेताजी की मौत की खबर सुनकर खिल गए। कहने लगे—"अरे, कब मरे! अच्छा हुआ, कल ऐश रहेगी। दिन भर घूमेंगे-फिरेंगे। परिवार के साथ मटरगश्ती करेंगे। कल छुट्टी रहेगी न?" मैंने कहा—"छुट्टी रहेगी, लेकिन यह मजे के लिए नहीं है। यह शोक मनाने के लिए है और आप हैं कि ऐश करने की बात कर रहे हैं? तुम्हारे घर में कोई हादसा हो जाए, तब?"

कर्मचारी गुस्से में आ गया—"खबरदार, अंट-शंट बात की तो! मरें हमारे दुश्मन। घर की बात और है, बाहर की और!" मैंने कहा—"जो महापुरुष मरा है, वह भी देश को एक परिवार समझता रहा। घर समझता रहा। इस तरह मरने वाला हम सबके परिवार का ही एक सदस्य था। मानते हो कि नहीं?"

कर्मचारी चालू चीज था। बोला—"मानने और होने में फर्क है। हमारा साफ-साफ तर्क है। फिर होगा महापुरुष, हम तो नहीं हैं न! जो चला गया सो चला गया। दुखी क्यों हुआ जाय। अच्छा हुआ, चले गए। चारों तरफ जब शैतानों की बस्ती बसी है तो ऐसे महापुरुषों का रहना शोभा नहीं देता। दो-चार महान टाइप के लोग अभी बचे हुए हैं। ये भी अपनी फजीहत देखने से पहले चले जाएं तो हम लोग गंगा नहाएं।"

कर्मचारी बड़ा घाघ था। कर्म को चर-चर कर अपना जीवन बिताने वाला। मैं आगे बढ़ गया। एक घरेलू महिला से मुलाक़ात हो गयी। हमने पूछा—"बहन जी, अपने देश के बड़े नेता जी मर गये हैं। आपको दुःख तो हुआ होगा।" महिला बोली—"हां जी, बड़ा दुख हुआ। क्यों नहीं होगा।" हम प्रसन्न। चलो, संवेदन-शून्य माहौल में कोई तो है, जिसके

भीतर करुणा जिन्दा है। मैंने पूछा—मरने वाले महापुरुष की किस बात से आप प्रभावित थीं?"

"मैं तो उसके बारे में ठीक से नहीं जानती।"

"तो फिर दुख किस बात का है आपको?"

"अरे भई, टी वी के सारे कार्यक्रम जो बंद हो गए हैं। "टन-टना-टन टन-टन-टारा" की जगह भजन चल रहा है। हमें तो बहुत खल रहा है। ये बड़े लोग क्यों मर जाते हैं? खामखा टीवी को शोक मनाना पड़ता है। अपना तो मर गए, और हम लोगों के मनोरंजन की भी जान ले ली। इसी का हमें दुख है। ये सीरियल-फीरियल, फिल्म, चित्रहार वगैरह कब से शुरू होंगे, जी?

आजकल कितनी 'फास्ट लाइफ' हो गई है। हर तरफ टेंशन ही टेंशन। एक का दो, दो का चार करने में सबका सुख हराम हो रहा है। टीवी-रेडियो के कारण 'मूड' फ्रेश हो जाता है जी! अब तो कुछ दिन तक 'वीसीआर से काम चलाना पड़ेगा।"

अधिकांश लोग बड़े आदमी की मौत से खुश थे—छुट्टी जो मिलेगी। जो दुखी थे, वो इसलिए कि टीवी पर भजन आ रहा है, रेडियो पर वायलिन बज रही है। जो सचमुच दुखी थे तो थे। ये रचना उनके लिए नहीं है। आपके दुख का असली कारण क्या है? □

कौन कहे मां तुझको अबला! ... उर्फ़ सिंहासन महाराज

संजीव चट्टोपाध्याय

बांग्ला के यशस्वी कथा-साहित्यकार, व्यंग्यकार एवं आनन्द बाज़ार प्रकाशन समूह के वरिष्ठ सम्पादक। अब तक सत्तर से अधिक कृतियां प्रकाशित एवं चर्चित। अज्ञातवास, अग्निसंकेत, तूमि आर आमि, दूटिदरजा, बाड़ि बदल, राखिस मा रसेबेशे, लोटाकाबल, शंखचिल और श्वेत पाथरेर टेबिल के लिए विशेष सम्मानित। आनन्दबाजार साहित्य पुरस्कार से अलंकृत श्री चट्टोपाध्याय अपनी शैली और मौलिक दृष्टि के लिए पाठकों में बेहद लोकप्रिय हैं। प्रस्तुत अंश 'फिरे फिरे आसि' संग्रह से लिया गया है।

पिछले जन्मों की बात जाने दो तो मेरा जन्म—इस शताब्दी के खत्म होने के कुछ वर्ष पूर्व हुआ। मैं एक कागज़ी यानी काग़ज़ का कारोबार करने वाले व्यापारी के घर में पैदा हुआ। उनके यहां रुपए-पैसे की भला क्या कमी होती? एक जगमगाती कोठी थी, चमचमाती कार थी, हमेशा पों ... पों ... करती रहती थी। इस घर में इधर-उधर मंडराने वाले कुछ होनहार बालक थे, कमरों में इधर से उधर घूमते दौड़ते और 'चोर-सिपाही, मंत्री-राजा' खेलते रहते थे। मैं इसी सदाबहार और प्रसन्नता भरी त्रासदी में पैदा हुआ था।

इस कोठी के फर्श झकाझक लाल थे। इसके मुंडेरों पर सफ़ेद कबूतर लगातार गुटरगूं किया करते थे। घर में दुर्गा पूजा होती। दावतें होती रहतीं। घर की औरतें पूरे-पूरे

दिन रसोईघर में घुसी रहतीं। घर के तमाम बड़े-बुजुर्ग खाने के बाद अपनी तोंद पर हाथ फेरते रहते और ड्कार लेते रहते। और हां, कलवतिया पान का पागुर किया करते थे।

मैं पैदा हुआ ... इसी पवित्र और दिव्य परिवेश में। एक महीना बीता ... दो महीने बीते ... तीसरा महीना भी बीत गया ... मैं बड़ा होता चला गया ... बढ़ता चला गया ... फैलता चला गया। मेरी मोटी-ताजी गुलथुल काया लगातार और तेज़ी से बढ़ती चली गई। मैं खुद हैरान था।

मेरी ज़ुबान से प ... प ... म ... म ... फूटने का वक्त आया ... लेकिन कोई कल्ला नहीं फूटा। वक्त बीत गया लेकिन हलक़ से कुछ निकला नहीं। सिर्फ़ ... गों ... गों ... जैसी कोई आवाज़ गले में फंसकर रह गई। इसी तरह घुटनों के बल यानी 'घुटरून चलत' ... की घड़ी भी आकर भी गुज़र गई। और मैं लगभग सारा दिन सो-सोकर ही बिता देता। कभी-कभार दीवार से टिककर बैठा रहता। और जिस उम्र में बच्चे डगमगाते पैरों से चलना सीखते हैं, वह उमर भी निकल गई। सबकी आंखें, इतने दिनों के बाद एक साथ हैरान हो गई कि ... अरे यह क्या। यह बालक क्या सारी उम्र इसी तरह पड़े-पड़े अपना जीवन गुजारने के लिए पैदा हुआ है?

मेरी जननी को बड़ा ही दुख था। मेरा बड़ा बेटा क्या इसी तरह साक्षी गोपाल बनकर खड़ा रहेगा। मैं उस मां की आंखों में कई-कई ऐतिहासिक मांओं की झलक देखी। वह कभी शकुन्तला लगी तो कभी सीता, कभी महामाया तो कभी यशोधरा। और इस 'चित्रहार' में मैं अपने को शिलाशायित बुद्ध की तरह देख रहा था। मेरी अबला मां भी मुझे देखते हुए यही महसूस करती थी। वह अर्धउन्मीलित नेत्रों वाले भगवान बुद्ध की कोई प्रतिमा देख रही थी।

इस घर में बुद्धदेव की अर्द्धशायित प्रस्तर मूर्ति भी थी। इसे कोई बर्मा, (जिसे अब म्यामां भी कहने लगे हैं) से ले आया था। खैर, मुझे टटोलने सबसे पहले आया ऐलोपैथी का डॉक्टर। लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ। मैं जैसे सोया पड़ा था—वैसे ही पड़ा रहा। इसके साथ ही अपने दाहिने हाथ का अंगूठा चूसता रहा ...चबर ... चबरम ...।

रात हो जाने पर मेरी अबला मां अपने हाथों मेरा हाथ सहलाती हुई बोली, "लाल मेरे ... दुलारे मेरे ... आंखों के तारे मोरे ... तू कुछ तो बोल मेरे लाल। ... कुछ बोल न बोल ... एक बार मां तो बोल ... मेरे सोना ...। तू अगर इसी तरह सोया रहा, पड़ा रहा तो काम कैसे चलेगा मेरे बाबा। तू थोड़ा चलना-मचलना तो सीख। तू कोई महादेव तो नहीं कि एक जगह पड़ा रहे और गड़ा रहे। तुझे उठना है, काम करके खाना-कमाना है।"

मेरी मां जब इस तरह की चिरौरी करती तो मेरे पिताश्री, जो बगल में ही, दूसरी करवट सो रहे होते, कहने लगते, "अरे यह तुम क्या कह रही हो भगवान! यह भी कोई बात हुई ... छिः ... छिः ... छिः पड़ा रहने दो उसे।" ऐसा जान पड़ता मां ने कोई गलत

काम किया हो।

बार-बार और लगातार ऐसी बातें सुनते-सुनते मां एक दिन नाराज़ होकर कहने लगी, "मैंने कोई ग़लत नहीं कहा है। ग़लत तुम कह रहे हो।"

ख़ैर, इस दौरान कविराजी, होमियोपैथी, हकीमी, लुकमानी, टोना-टोटका और तारकेश्वर जाकर पाठे की बलि देने तक, सारे पवित्र कार्यक्रम संपन्न हो गए। लेकिन कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। मैं सोये-सोये ही बड़ा होता रहा, फैलता रहा। और यह कोई ज़रूरी नहीं कि छत या आसमान की तरफ सिर उठाकर ही बड़ा हुअ जा सकता है। चिकने फर्श पर और धरती पकड़ भी कद-काठी बढ़ायी जा सकती है। मैं भी पलने से पलंग पर शैयामान हो गया। इस प्रोमोशन पर मेरे सभी हितैषियों को पता चला कि मैं एक लता-सरीखा 'हॉरिजेन्टल' मानव हूं। सोये-सोये फैलते जाने के कारण मेरा चेहरा दैत्य जैसा होता चला गया। कुंभकरण की तरह। मेरी मूंछें निकलने लगीं, दाढ़ी बढ़ आई। मुझे अब 'लाल राजा' की जगह 'लाला बाबू' कहा जाने लगा। 'बचुआ' और 'बबुआ' की जगह अब मैं 'बड़े बाबू' बनकर सारे कमरे में छितरा पड़ा था। मेरे अप्रिय प्रशंसक और प्रिय निंदक मेरे बारे में यही कहा करते थे कि अगर इसे मैदान में खड़ा कर दिया जाय तो यह गांधार युग की किसी विराट और साथ ही विकराल पाषाण प्रतिमा की तरह लगेगा।

इसी कोठी में, एक तल्ले पर एक कमरा था—मरे लिए काफ़ी छोटा, लोगों के लिए काफ़ी बड़ा। यह सड़क के किनारे था और इसमें एक बड़ी-सी खिड़की भी थी—जो बाहर खुलती थी। यह खिड़की लोहे की सरियों वाली थी। इसी कमरे में मुझे खिड़की से टिकाकर बिठा दिया जाता था। नंगी देह और घुटने तक एक मोटी धोती पहनकर मैं दीवार से पीठ टिकाये किसी गुरिल्ले की तरह दांत निपोरता रहता और आने-जाने वालों को निहारता रहता। इस बीच आप सबकी कृपा से मैं इतना बोलना जरूर सीख गया था'कोता दात्तिस।' (कोथाय जाच्छिस'—यानी कहां चले) मुझे जो कोई भी रास्ते से गुजरता दीख पड़ता, मैं उससे पूछता, 'कोता दात्तिस।' हे ईश्वर, मुझे नहीं पता कि मैं कोई मानव था या नहीं—लेकिन मैं अब धीरे-धीरे एक जीवंत, मूर्तिमान जीवन दर्शन बन गया था। सभी जा रहे हैं ... कहीं ... न कहीं तो जा ही रहे हैं ... घर ... दफ्तर ... स्कूल कॉलेज ... हाट ... बाट ... घाट ... मंदिर ... मस्जिद ... मजार ... स्टेशन ...। लेकिन ... दरअसल वे जा कहां रहे हैं? मेरा यही तो पहला और आखिरी सवाल था ... इकलौता सवाल ... "कोता ... दात्तिस ...।" बाज़ार जा रहे हो ... जाओ। कचहरी जा रहे हो ... जाओ। बहू बाजार जा रहे हो ... जाओ। चौरंगी जा रहे हो ... ज़रूर जाओ। लेकिन अंत में जाओगे कहां? यह तो बताओ। मसलन यह सोच लो कि एक जहाज है ... सोच लिया न ... हां तो उस जहाज़ पर कई मुसाफिर सवार हैं। ठीक है ... अब कोई इधर जा रहा है कोई उधर जा रहा है। पूछो तो कोई कहेगा, मैं केबिन में जा रहा हूं। कोई बोलेगा, "हम डेक पर जा रहे हैं।'

कोई कहेगी, "भाड़ में जा रही हूं ... तुझको मतलब।"

ना ना ... ऐसे उत्तरों से तो पूरब-उत्तर-दक्खिन सब मिक्स हो जायेगा। यानी उत्तर सही होना चाहिए। जहाज़ तो लिबरपुल जा रहा है। तुम सब चाहे जहां जाओ यह जहाज तो सिर्फ़ एक ही जगह जा रहा है—लिबरपुल।

"कोता दात्तिस?" एक-एक आदमी से यही एक अदद सवाल।

कोई इधर ताकता ... मुस्कुराता ... फिर गुजर जाता। कोई नाक की सीध में चला जाता। कोई गाली देता और मेरे साथ एक पारिवारिक रिश्ते पर खास जोर देता। मैं इन मिले जुले 'रियेक्शनों' की चीर-फाड़ करता थक जाता और थककर सो जाता।

मेरी अबला मां की शुरू से यह धारणा थी कि मैं एक महापुरुष हूं ... कोई गुप्त योगी हूं। मेरा वह अज्ञात परम स्वरूप इस वर्तमान स्वरूप में विद्यमान है। भले ही वह ओझल हो। वह हाथ जोड़कर कभी-कभी मुझसे मिन्नतें करने लगती—"अब और कितनी माया रचोगे प्रभु! तुम्हीं तो मेरे लिए बराह अवतार हो। दया करो प्रभु। तनिक आंखें उठाकर इधर घर की तरफ भी तो देखो। आजकल कारोबार मंदा चल रहा है प्रभु।"

और मैं छूटते ही अपना वही सवाल दोहरा देता, "कोता दात्तिस?"

मेरी इस बात पर, इस प्रश्नवाणी ... कि तू कहां जा रहा है ... पर पल-छिन के लिए ध्यान तो दे रे मूढ़ मानव। अरे मूढ़ मते, इस गूढ़ प्रश्न के बारे में सोच। तू गिरीश घोष के बारे में जानता है—कैसा बढ़िया नौटंकीबाज था। रामकृष्ण परमहंस जैसा परम भक्त भी उसी ने भेजा था। वे इसी तरह के पदगान लिखते रहे हैं : "बार-बार आता हूं ... कहां से आता हूं, कहां चला जाता हूं। बार-बार आता हूं। कितना रोता-गाता कलपता हूं। कहां वापस चला जाता हूं ... यह कभी सोच नहीं पाता हूं ... ।"

सोचो मेरे भैया ... कि कहां जा रहे हो ...! "कोता दात्तिस?"

आगे की बात तो और भी मजेदार है। पिताजी का कारोबार अचानक शिखर छूने लगा था ... किसी ब्राण्ड कारपोरेशन की तरह। तो भी मेरी अबला मां कातर कंठ से पुकार उठी, "मैं तुम्हें पहचान गई प्रभु। लाख रूप छिपाओ लेकिन मां की आंखों को धोखा देना बड़ा मुश्किल है ... तुम अपना करूणामय स्वरूप तो दिखाओ ... ।"

और मैंने छूटते ही कहा था—"कोता दात्तिस।

मति की भोरी मेरी इस ममतामयी मां की प्रार्थना को एक चेरी यानी घर की पार्ट-टाइम नौकरानी ने सुन लिया। वह आधे दर्जन घरों में काम करती थी। बात पलक झपकते दर्जन भर घरों में जा पहुंची। बात भी क्या कि अवतार हुआ है। हर सरकारी, ग़ैर सरकारी और निजी खातों में धर्म की हानि ग्लानि हुई है। इसलिए ऐसा अवतार होना ही था। मेरी नौकरानी ने इस खबर को मिर्च मसाले के साथ और भी जायकेदार और चटपटा बना दिया था—कि

मां ने जब मुझसे इस तरह का निवेदन किया था तो मैंने अचानक 'हां' ... कर दिया। मेरे गला फाड़ते ही उसे उसी विश्वरूप का दर्शन हो गया। अवतार आखिर अवतार है। मेरा चेहरा तो वह ठीक से नहीं देख पाई और अगर देख लेती तो शायद कांप उठती और उसे ठंडे पसीने के साथ तेज बुखार हो गया होता।

यह खबर जंगल की आग की तरह फैल गई। हमारी पुश्तैनी कोठी के सामने भीड़ जमने लगी। अब मेरे 'कोता दात्तिस' कहने पर कोई जीभ नहीं दिखाता या खीसें निपोरता था। अब हरेक आदमी एक दूसरे को समझाने की कोशिश करता। यही तो जीवन का सूत्र वाक्य है—कथन सार है—"कहां जा रहा है?" प्राणी कहां से तू आया है और कहां तुझे जाना है। तुम्हारा यहां से किसी असीम चौधुरी या श्रीमती गीतांजलि चटर्जी के यहां जाना नहीं है। तुम दुनिया में आए हो क्योंकर और यहां से निकलकर जाओगे कहां? एक आदमी ने इस मामले को खुलासा करते हुए कहा—यह ऐसा-वैसा रोज़मर्रे वाला "आना-जाना नहीं है कि तुमने जो कुछ मुंह में डाला वह दांत-आंत और भांत-भांत से गुजरता हुआ, मल बनकर पिछवाड़े से निकल गया। यह तो सीधे तुम्हारे कलेजे को छील जाने वाला सवाल है। और इतना कह चुकने के बाद उसने मेरी तरफ प्रजा-भाव से देखा और ज़ोरदार जयकारा लगाया—"जय हो प्रभु।"

इसके साथ ही, मैंने उस आदमी से वही आदर्श सवाल पूछ लिया, "कोता दात्तिस?"

"आप ही बताइए न प्रभुपाद ... कहां जा रहे हैं हम।"

और इसके साथ ही चारों ओर कोलाहल-सा होने लगा। मैंने खिड़कियों के पुरातन पल्ले को इस ताज़ा शोर में कांपते देखा और सुना, "महामानव का अवतरण हुआ है। उसकी भारी-भरकम काया-सम्पदा इस कोठी में स्थापित है। उसका चेहरा बड़ा ही भोला है। उसका लिंग एक नन्हें शिशु की तरह सुशोभित है। इच्छा करते ही वह महामानव उठकर खड़ा हो सकता है। और अगर वह सचमुच खड़ा हो गया तो कमरे की छत से जा टकराएगा। इससे उपस्थित भक्तगण घबरा जाएंगे। इसलिए उसने बालस्वरूप में अपना संवरण कर रखा है। वह बाल लीलाएं करता है—घुटनों के बल चलता है, करवट लेता है। अंगूठा चूसता रहता है और गुलाटियां खाता है। इतना ही नहीं, स्तनपान भी करता है। किलकारियां भरता है। पूरे शहर में उसके आकार का पालना नहीं। अगर होता तो वह उस पर लेटा रहता अंगूठा चूसता रहता।"

इस बीच, मेरे लिए एक चौकीनुमा सिंहासन बनाया गया। लाल मखमली गावतकिये और जरीदार मसनद सजाये गये। कमरे में चंदनी धूप और धुनी का पवित्र धुआं हर घड़ी मंडराता रहता। सेवक-सेविकाओं की समर्पित मंडली आती-जाती रहती। मैं आठों पहर अपनी भूधराकार काया को फैलाए जम्हाइयां लेता रहता और गावतकियों से अठखेलियां करता वही यक्ष-प्रश्न दोहराता रहता—"कहां चले" ... "कोता दात्तिस।"

मेरे आसपास जमा भीड़ स्तब्ध और विमूढ बैठी रहती। लोगों की हैरानी पर मैं सचमुच कभी-कभी विचलित हो जाता था। इनमें से कोई-कोई तो रोने-बिसूरने लगता और पछतावे के साथ हिचकियों में बंद हो जाता। कोई स्वीकारोक्ति पर उतर आता—"अब वहां नहीं जाऊंगा बाबा। आपके शिशु चरणों की सौगंध।" इनमें से कई वेश्याओं के पास गये थे। कई अपनी सालियों, गर्लफ्रेंड, स्टेनोग्राफर और रखैलों के साथ राजगीर और पुरी गए थे। कुछ बिला नागा शराबखाने और कलाली के यहां जाते थे। कुछ दलाली खाने जाते थे।

चारों ओर हाहाकार-सा मचा रहता। इधर सारा घर भक्तजनों के जिम्मे ही पड़ा रहता। मेरे खानदानी भैया सात दिनों के लिए समन्दर पार गए थे—कारोबार के सिलसिले में। काग़ज़ बनाने के लिए विलायती लुगदी का ठेका मिल गया था शायद। मेरी अबला मां सबला भाभी के कमरे में बतकही में व्यस्त थी।

इस बीच किसी भक्तराज ने मेरी वंदना में कोई तुकबंदी की थी। भक्त-मंडली उसके सुर में सुर मिलाकर भक्ति संगीत में डूबी हुई थी—

कैसी है प्रभु तेरी माया। मैनाक सम यह भूधर काया।।
शिशु जैसी निर्मल मुसकान। कौन कवि कर सके बखान।।
दूधिया दांतों की चमकान। नयन उनींदे लम्बे कान।।
तुम प्रकाश हो तुम ही छाया। तुमने सारा खेल रचाया।।
तुम्हीं चन्द्र हो तुम्हीं हो सूर्य। बजे चतुर्दिक तेरा तूर्य।।
इधर भी देखो कृपानिधान। भक्तों को दो दया का दान।।

लेकिन इसी तरह औंधे-तिरछे बड़े-बड़े कभी-कभी मेरे दिमाग में शरारती जरासीम या विषाणु कुलबुलाने लगते। मैं करवट बदलकर कभी अपने पांव सामने की तरफ झटक देता और पीछे की तरफ खींचने को होता कि मेरे पैताने बैठे भक्तों में से तीन-चार लोग चारों खाने चित्त हो जाते। लेकिन मेरी ज़ोरदार लताड़ खाकर भी वे खुशी से चीख पड़ते "कृपा ... कृपा करो हे कृपानिधान।"

क्या था कि गाहे-बगाहे इस लात या लताड़ खाकर ही शायद कुछ भक्तों के क्रॉनिक या सदाबहार रोग दूर हो गए। मैं ऐसा कुछ अनोखा कर पाऊंगा—ऐसा पहले से कुछ तय नहीं था। यह भी पूर्व निर्धारित नहीं था कि "हे प्रभु ... लात जमाओ", सुनकर मैं प्रबल चरण-प्रहार द्वारा उन्हें अनुग्रहीत करूंगा। इसलिए ऐसा कोई भी संभावित लतखोर सब्र के साथ अपनी बारी का इंतजार किया करता। मेरे पायताने बैठने के लिए उनके बीच आपाधापी अफरा-तफरी और मारामारी शुरू हो जाती। मेरी लात खाने की उम्मीद में वे एक-दूसरे पर लात-घूंसे जमाने लगते।

"बाबा की लात" जूते बनाने वाली बड़ी-बड़ी कंपनियों के जूते की तरह प्रचारित हो गई। मैं बैठे-बिठाये एक और तमाशा किया करता। आसपास पैठी किसी क्वांरी, खूबसूरत और लम्बे बालों वाली युवती के बाल अपनी मुट्ठियों में भींच लेता और फिर झटकों के साथ उन्हें खींचता चला जाता। लेकिन यह क्या ... ऐसी बेज़ा हरकत के बावजूद वह मेरे पथराए घुटनों के बीच कटी हुई डाल की तरह गिर पड़ती और सुधबुध खोकर मुझ पर अपने तमाम मानव संसाधन न्योछावर करने में तन-मन और यौवन से जुट जाती। और इस पुण्य समर्पण बेला में भक्तों का सम्मिलित सारा हाहाकार चीत्कार और करुण क्रंदन महासंकीर्तन में परिवर्तित हो जाता—

"हे भवसागर तारनहार
मेरी घन्नई कर दे पार।...
चाहे जितनी पड़ेगी मार
कभी न छोड़े तेरा द्वार।..."

मैं कमनीय युवतियों को सार्वजनिक रूप से अंग लगाकर कृतार्थ कर दिया करता। यह मेरी कृपा का कर्टेनरेजर और करूणा का संक्षिप्त निदर्शन या उदाहरण मात्र था। इससे अगति को गति मिल जाती और दुर्गति की दुर्गति दूर हो जाती। उनका अच्छे घरों में तुरंत विवाह हो जाता। उनके घर हृष्ट-पुष्ट बोर्नविटा छाप संतान का निरंतर उत्पादन होता रहता। पति परमेश्वर प्रोन्नति पाता और उनके परदेशी प्रेमियों के कविता संग्रह घटिया कागज़ पर लगातार छपते रहते और मुफ्त में महाप्रसाद की तरह वितरित होते रहते।

शाम को गंभीर प्रवचन का आयोजन होता। विभिन्न दिशाओं से पधारे पण्डितगण शास्त्रार्थ करते। एक सूत्र वाक्य से जुड़े और उलझे सूत्रों की ग्रांथिक व्याख्या करते। "कोता दात्तिस"—सिर्फ़ दो शब्द मानी "कहां चले।" वस्तुतः इन्हीं दो शब्दों में ही सचराचर महासिन्धु की समस्त भावतरंगें मचल रही हैं—वे वसुन्धरा को मथ रही हैं। "कोता" का "को" है को दण्ड और "ता" इंगित करता है ताग को। "दा" व्यंजित करता है "दाता" को। त तोड़ का संयुक्ताक्षर 'त्त' से ध्वनित होती है सृष्टि। "इ" से ईश्वर का बोध होता है, जो स्त्रष्टा है। अर्थात् हे जीव, तू अपने धनुष पर ताग दे। प्रत्यंचा चढ़ा। और उस स्त्रष्टा की तरफ़ अपने इच्छा रूपी बाणों को छोड़ता चला जा। और इस मिथ्याभिमान को तजता चला जा कि तू ही यह सब कर रहा है। सरल बन, निरहंकारी बन। सृष्टि और स्त्रष्टा के बीच तीव्र तीर संधान हो रहा है—यही तो है शाश्वत जीव लीला। और इस चिरंतन लीला को बाल लीला-स्वरूपी प्रभुपाद श्री श्री 1008, अखण्ड बाल-ब्रह्मचारी पुण्यलोक सिंहासन श्री महाराज चरितार्थ कर रहे हैं।" ...

और इसके साथ ही पुण्यात्मा श्रोता मण्डली साधु ... साधु कह उठती। कई भक्तजन की आंखें पुरानी हवेली की छतों की तरह चूने लगतीं। कोई-कोई मेरे हाथी छाप पैरों को

हथियाने की असफल कोशिश करता। क्योंकि मेरा चरणस्पर्श करना इतना आसान नहीं था। उधर व्याख्याकार प्रसंग व्याख्या करते रहते, "भागवत में कहा गया है कि बालक गुरु है और वृद्ध शिष्य है। एक वटवृक्ष के नीचे इस बालक गुरु को वृद्ध शिष्य घेर कर बैठे हुए हैं। वही लीला आज हमारे चर्मचक्षु के सम्मुखीन है। विशाल बालक हमारे सामने विद्यमान है—वही तो परम भागवत हमारी प्रार्थना पर लौट आए हैं। जय बाबा बालस्वरूपी सिंहासन महाराज!"

'जय बाबा बाल योगीराज ... सिंहासन महाराज ... तुम्हारी जय हो ...'

इस बीच "कोता दात्तिस" शीर्षक से, टीका-टिप्पणी से सामाजिक और प्रसंगानुसार समर्पित एक ग्रंथ भी प्रकाशित हो गया। इसकी आय इंटरनेशनल सिंहासन महाराज ट्रस्ट में अपने आप चली जाएगी, यह भी एक अबला मां के आरंभिक निवेदन में था। इससे महापुरुष की मां की खातिर ही नहीं, ख्याति भी बढ़ गई। महापुरुष के पिताश्री, अब इस अबला मां मणि से कभी यह नहीं पूछते थे कि तुमने यह क्या किया? बल्कि कहा करते थे, "तुम्हारे पेट में इतना कुछ था—यह तो मुझे पता ही नहीं था। कारोबार लहक उठा था। दुनिया भर की नायाब भेटों, चढ़ावों और न्यौछावरों से घर का कोना-कोना पट गया है। अब तो फल और मिठाइयों को देखते ही अरूचि-सी होने लगती है। ओह ... अब और झेला नहीं जाता।"

अब अबला मां भी क्या करे? चौदह-चौदह बनारसी साड़ियां ... क्या ओढ़े क्या निचोड़े ...। घर के सभी छोटे-बड़े सदस्यों की चिकनी देह पर से मक्खियां तक फिसलने लगी थीं। पता नहीं, देश-विदेश के किस कोने से लोग कतारों में आते रहते थे। "क्या चाहिए ..," पूछने पर बताते थे .,. "कुछ नहीं ... बस ... बाबा बालकेश्वर की एक लात।" एम.एल.ए., मंत्री, धनकुबेर, कारोबारी, डॉक्टर, विधवाएं, परित्यक्ताएं, वकील, प्रोफेसर सभी। जो जितने बड़े पद और ओहदे पर थे, वे लात खाने को उतने ही प्राण कातर और आतुर दीख पड़ते थे। एकाध लात खाकर एम.एल.ए, मंत्री होना चाहता था। मंत्री, मुख्यमंत्री और मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री होना चाहता था। लखपति, करोड़पति और करोड़पति अरब-खरबपति होना चाहते थे। डॉक्टर चाहते थे कि पाश एरिया में उनका नर्सिंग होम बन जाये। यानी हर पैसे वाले का दिल-दिमाग, किडनी और स्पाइनलकार्ड खराब हो जाय। सभी को ज्यादा से ज्यादा फ़ायदा चाहिए। और ... और ... और भी ज्यादा।

मैं मुलायम गावतकियों से टिका, बड़े आनंद से अपना अंगूठा चूसा करता था। सामने बड़ी मिन्नत मांग रही भीड़ का एक ही एजेण्डा था—"बाबा ... जम के जमाओ लात। ... चाहे जैसे भी हो आड़े-तिरछे, औंधे-सीधे, दायें-बाएं ... जैसे भी हो लात मारो ... कृपा करो। प्रजापति बालकेश्वर महाराज।"

अचानक मेरी तबीयत पड़े-पड़े कुछ बिगड़ गई। मेरा सिर कंधे पर लटक गया।

मेरा खाना पीना बंद हो गया। मेरी भारी भरकम काया सिकुड़ती चली गई, चूसे हुए आम की तरह।

मेरे पिताश्री जो पहले मेरी अबला मां से कहा करते थे, "यह क्या कर डाला भागवान! यह मरे तो जान छूटे"—वही अब जी जान से मेरी जान बचाने के लिए दुनिया जहान की खाक छानने लगे। घर में डॉक्टर, हकीम, वैद्य, ओझा गुनी, प्रेस रिपोर्टर, टी.वी. कवरेज वाले ... आने लगे। एक जाता तो दूसरा आता। चारों ओर हाहाकार मन गया। "अरे बाबा ... आप गुजर गए तो हमारा गुजारा कैसे होगा? इन तमामतरह के रोज़गार, कारोबार, भोग भेंट, कीर्तन आनन्द, लात-लूट, हवा दवा-हलवा और हवालों का क्या होगा? सारे रंगारंग कार्यक्रम बंद हो जाएंगे महाराज।"

—फिर से भोग लगाओ बाबा।
—हम पर तरस खाओ बाबा।
—हमें छोड़ मत जाओ बाबा।
—अपनी दया दिखाओ बाबा।
—हम पर लात जमाओ बाबा।

चार्टड प्लेन से अमेरिकन डॉक्टर आए। मेरे घर के सामने भक्तों का जयकारा कुछ देर के लिए रूक गया। उन्होंने बंद कमरे में मेरी नब्बे प्रतिशत नंगी देह का मुआइना किया और बुलेटिन जारी किया—"बाबा को वाइरस हुआ है। ट्रॉपिकल किस्म का। इस वाइरस की लैब में जांच की जाएगी।" और प्लेन वापस फ़िलाडेलफिया उड़ गया।

एक दिन सिन्दूरी शाम ढलते ही मेरा प्राणपंक्षी पिंजरा छोड़कर उड़ गया। खेल खत्म, पइसा हजम। मेरे सिरहाने मेरी अबला मां आंचल से अपने आंसू पोंछती बैठी थी। कोई कुछ भी कहे, मेरी मां मुझे बहुत चाहती थी। बेचारी जीवन भर मेरी देखभाल और सेवा में रात दिन जुटी रही।

अपनी इस प्रस्तावित और प्रयोजित मौत के पहले मैंने अपनी मां की ओर ताकते हुए पूछा था, "मैं कहां जा रहा हूं मां?"

यह मेरे गले से फूटा पहला वाक्य था जो अबला मां से पूछा गया था। यह मेरे अपने भविष्य से जुड़ा पहला सवाल था—"मैं कहां जा रहा हूं?"

मेरी मां की आंखों में आंसू थे ... सारे किनारों को तोड़ने वाले आंसुओं का सैलाब उमड़ता देखकर मैंने अपनी पलकें बंद कर ली थीं। ... हमेशा हमेशा के लिए।

मेरा अगला जन्म और जीवन अब पूरी तरह प्रायोजित और ग्लोबल था और मुझे ढोने के लिए जो कोख तैयार थी—उसके लिए किसी मल्टीनेशनल ने पहले से ही बैंक गारंटी दे रखी थी। □

अनुवादक : डॉ. रणजीत साहा

लीली कोर्ट

आबिद सुरती

एक चाल है जिसका नाम है लीली कोर्ट। इस चाल में अनेक रंग बिरंगे रोचक चरित्र रहते हैं। कमरा नम्बर तीन में पीरू रहता है, खोली नम्बर चार में गुजराती परिवार है, खोली नम्बर नौ में हंसमुख सरदार जी हैं, रमजान चाचा हैं, माइकेल हैं अर्थात पूरा हिंदुस्तान इस चाल में रहता है। इस चाल में लीली कोर्ट के हीरो केशवलाल का कमरा नम्बर दो में रहने वाली मंजुला शाह से इश्क क्या रंग लाता है, इसे रोचक शैली में प्रस्तुत कर रहे हैं, गुजराती के कथा तथा व्यंग्य लेखक और 'डब्बूजी' के चित्रकार आबिद सुरती।

माफ कीजिए, यह किसी हाईकोर्ट या सिटी सिविल कोर्ट का नाम नहीं है—अपोलो बंदर स्थित हमारी चाल का नाम है। छत पर खड़े होकर आप दाहिने हाथ की तरफ देखेंगे, तो रेडियो क्लब का रंगीन वातावरण आपको दिखाई पड़ेगा और बाएं हाथ की ओर आलीशान 'ताज' होटल। पिछली गली में इलेस्ट्रिक हाउस का बस-स्टॉप है। यहां दिन की अपेक्षा रात में अधिक चहल-पहल रहती है—खासकर रहस्यमय स्त्री-पुरूषों की।

एक ज़माना था, जब लिली कोर्ट बर्फ के टुकडे-सी नाजुक और किसी कुंवारी कन्या-सी खूबसूरत थी। रंग गहरा गुलाबी तथा स्वच्छ। उस समय यहां सिर्फ वेश्याएं रहा करती थीं। विशाल वार-कूजर डाक में प्रवेश करते और हट्टे-कट्टे सोलजर इस चाल पर भूखे भेड़िये-से टूट पड़ते। उनकी खाकी पतलूनों की जेबों में मर्टिनी तथा रम की बाटलियां रहतीं जो शिप पर से वे अपने साथ ही लाते थे।

पकः पकः पकः ...

थोड़ी-थोड़ी देरी पर बाटल के कार्क खुलते। बन्द कमरों से आवाजें उठतीं और शराब की मस्ती में मुलायम शरीर मिलते। कैसा भी भयंकर मौसम हो, खिल उठती। मस्ती होती। उधम होता। प्यार होता। हाथापाई भी होती। और कभी किसी किस्मत की मारी लड़की के लिए मनमुटाव होते ही सोलजर एक-दूसरे के सामने बुलडाग की तरह गुर्राते, रिवाल्वर खिंचतीं, एक बुलेट दबती। एक धड़ाका होगा, एक लाश लुढ़क पड़ती और विजयी सोलजर मृत देह को दरवाजे के बाहर फेंककर बड़बड़ाता, 'बास्टर्ड'। तुरन्त कमरे का स्विच ऑफ हो जाता और साथ ही पूर्व तथा पश्चिम का भी एकीकरण हो जाता।

और आज?

आज लीली कोर्ट मौत की बाट जोहती जख्मी सोलजर की भांति छटपटा रही है। दीवार का गुलाबी रंग फीका भूरा लगता है। प्लास्टर की पपड़ियां उखड़ जाने से ईंटें सिर दिखा रही हैं। खिड़कियों के आधे कांच ठीक-ठाक हैं, बाकी के आधे लीली कोर्ट की वेश्याओं की तरह वक्त के साथ कहां अदृश्य हो गये हैं, यह कोई नहीं जानता।

पिछले कई सालों से इस चाल में सिर्फ़ सज्जन तथा सन्नारियां ही रहती हैं, ऐसा विश्वासपूर्वक कह सकता हूं। इस चाल में मैं भी रहता हूं।

मेरे सामने कमरा नम्बर तीन में पीरू रहता है। जेब काटने में अफलातून। उनकी आंखें चीनियों की तरह छोटी तथा शरीर पतला, सूखा और ऊंचा है। जुम्मे की नमाज उसने कभी छोड़ी हो, ऐसा मुझे याद नहीं। इतवार की रात वह पांच-छह दोस्तों के संग महफिल जमा बन्द किवाड़ों के भीतर बैठता है और पूरी रात पत्ते फेंटता है।

खोली नंबर चार में रहने वाले गुजराती कुटुम्ब के बारे में कहा जाता है कि 'वार' के बाद जगह की तंगी पड़ने पर सबसे पहले वे लोग यहां रहने आए थे। गोपाल भाई कुटुम्ब के बुजुर्ग व्यक्ति हैं, जिन्हें किस्मत से ही कोई गोपाल कहकर पुकारता है। उसकी पत्नी रमा भी प्यार से उसे 'गोपू' ही कहती है। खोली के छह बालक अभी तक इस नाम से अपरिचित हैं।

गोपाल 'राजुला' छोड़कर बंबई आया, तब सट्टे की बेटिंग में उसे अच्छा फायदा हुआ था। एक साल के भीतर उसने दस हज़ार रुपए जमा कर लिए, जो हर वर्ष बढ़ते ही गए। पांचवें साल पुलिस की धाड़ पड़ी। बुजुर्गों के अनुसार उसकी जेब से कागज की तमाम छोटी-छोटी चिट्ठियां मिली थीं। मुगल शहंशाह की तरह बेफिक्री से दिन काटते हुए गोपाल के कदम डगमगा गए। धीरे-धीरे अवस्था गिरने लगी और आज (कहते हुए अत्यन्त दुःख होता है) वह कोलाबा की मार्केट में केलों की फेरी करता है।

खोली नंबर नौ में रहने वाले सरदारजी हंसमुख, ऊंचाई सात फुट से कुछ कम, नाक चपटी और फैली हुई। आंखें नीली, चंबल के डाकुओं जैसी (जिनकी सहायता से चाल

की औरतें बच्चों को डराती हैं) । शरीर एकदम तंदुरूस्त और चाल नेपालियन के बाप जैसी है।

जब भी मैं इन सरदारजी को देखता हूं, मुझे उनकी पत्नी लता याद आ जाती है। रोज़ शाम को प्रार्थना के लिए जाना उसका नियम है। तंग कुर्ता, गर्दन में बारीक पत्थर की माला, गुलाबी सलवार और उससे मैच करता दुपट्टा। प्रार्थना के लिए जाते समय उसका लिबास कुछ इस तरह का होता है। साथ में लिपिस्टिक, पाउडर तथा सेंट भी।

रमजान चाचा से यह सहन नहीं होता। लता पर दृष्टि पड़ते ही उनके मुंह से 'लाहौल विला कूबत' निकल पड़ता है। गला खंखारते हुए मन-ही-मन कुछ बड़बड़ाते हैं, जिसका अर्थ अभी तक कोई नहीं समझ पाया है।

रमज़ान चाचा की उम्र सेंचुरी बेट्समैन की तरह संभल-संभलकर आगे बढ़ रही है। कोई नहीं जानता, विकेट कब डाउन होगा। उनकी उम्र नब्बे ऊपर पांच साल की है और कमरा नम्बर नौ के भीतर—माफ कीजिएगा—बहार ही रहते हैं।

लीली कोर्ट में आप प्रवेश करेंगे, तो सबसे पहले आपकी दृष्टि चाल के मध्य पड़ी हुई रमजान चाचा की चारपाई पर पड़ेगी। एक गंदी गुदड़ी, थूकदान, तसबीह तथा दीवार पर झूलती लाल गोंडा की टोपी भी आप देखेंगे।

रमजान चाचा को कुत्तों से सख्त नफरत है, विशेषकर कमरा नम्बर बारह वाले माइकेल के 'रॉकी' से। रॉकी जैसे रमजान चाचा का जन्म का साथी हो, ऐसे उनकी चारपाई के नीचे सोना पसंद करता है। एक दिन रमजान चाचा ने अच्छी तरह से लकड़ी फटकारकर रॉकी की टांग तोड़ दी। माइकेल को इस बात की खबर हुई, तो उसने रमजान चाचा को खूब गालियां दीं। दो-चार मुक्के मारने का भी उसका दिल हो आया, किन्तु बड़ी मुश्किल से हाथ पर काबू रखा। उसे भय था कि कहीं कफन गले न पड़े।

माइकेल जात का ईसाई है तथा दारू बनाने का धंधा करता है। उसके प्रताप से पांचवी मंजिल के टेरेस पर तमाम खड्डे पड़े हैं, जिनमें वह दारू की बाटलियां छिपाकर रखता है। दिन में दो बार रॉकी को साथ लेकर वह टेरेस का चक्कर मारता है और शागिर्दों को काम समझाकर पुनः गायब हो जाता है।

एक हिंदी फिल्म स्टोरी की तरह हमारी चाल में अनेक पात्र हैं—हीरो, कॉमेडियन, विलेन, वैप तथा एक्स्टराएं भी आवश्यकतानुसार हाज़िर हैं।

आइए, मैं आपका परिचय अपनी चाल के मुख्य पात्र से करवाता हूं।

श्री केशवलाल पद्मश्री : लीली कोर्ट के हीरो। 'पद्मश्री' शब्द पढ़कर आपको आश्चर्य हुआ होगा। मैं भी कहता हूं होने जैसा ही है। यह महान खिताब पैंतालीस साल के अधेड़ को किस तरह प्राप्त हुआ, यह आप सोच रहे होंगे। किन्तु असल में बात यह नहीं है। केशवलाल का असली सरनेम 'पद्मश्री' था। उसने तो सिर्फ़ महान कलाकारों को

प्रदान किए जाने वाले खिताब से प्रेरणा ले अपने सरनेम को थोड़ा बदल दिया। और इस प्रकार की अक्लमंदी एक हीरो ही दिखला सकता है।

जिस तरह से वाजिदअली शाह का नाम इतिहास के पन्नों पर एक मुकाम रखता है, उसी प्रकार हमारी चाल की वर्तमान तथा भावी प्रजा के हित केशवलाल का नाम भी ऐतिहासिक महत्व रखता है। उनके पास से हम लोगों को काफी जानना-समझना है।

श्री केशवलाल पद्मश्री जीवदया मंडल में एक प्रमुख स्थान रखते हैं तथा पशुओं की चमड़ी तथा हड्डियां विदेशों में निर्यात करते हैं। लुच्चई तथा प्यार में उनका मुकाबला कर सके, ऐसा कोई शख्स किस्मत से ही वास्तविकता में मिलेगा। उम्र पैंतालीस वर्ष की होने के बावजूद आज उनका हृदय सत्रह वर्ष के रोमियों की तरह बेलगाम है। किसी लड़की को निकट से गुजरता देखकर उनका खून जोश खाकर खलबला उठता है। फिर लड़की चाहे देखने में कितनी ही बदसूरत हो, उनकी अनुभवी आंखें हमेशा खूबसूरती ही देखती हैं।

'ऐ बदमाश।' एक दिन रमजान चाचा ने बेचैन होकर कह डाला, 'थोड़ी शर्म करो। सिर पर सफ़ेदी आ गई, बत्तीस दांतों में से सिर्फ बारह सलामत हैं और ऊपर से प्यार करने का शौक रखते हो? चुल्लू भर पानी में डूब मरो।"

केशवलाल बारीक मूंछों पर हाथ फेरते हुए आदत के अनुसार हंसा और बोला, "चाचा, इसमें बुरा क्या है?"

"परायी लड़की को ताकना क्या भलेमानस का काम है?"

"चाचा।" केशवलाल ने कहा, "एक बात बताओ। भगवान ने आदमी को आंखें किसलिए दी हैं?"

"देखने को।"

"तब मैं देखता हूं, तो इसमें गलत क्या है?"

"लाहौल विला कूबत।" रमजान चाचा मन-ही-मन बड़बड़ाते हुए ठंडे हो गए।

केशवलाल ने आज तक ब्याह नहीं किया। और करने का विचार भी नहीं रखते। आस्कर वाइल्ड के अनुसार, 'कुंवारा पुरूष जीवन भर स्त्रियों के लिए आकर्षणस्वरूप होता है'—और केशवलाल इसका जीताजागता उदाहरण है।

पांचवें महले की सारी स्त्रियां (शादी-शुदा तथा कुंवारी) स्वतंत्र हुई हैं, तो इनके प्रताप से। कमरा नम्बर दो में रहती मंजुला शाह भी उनके चंगुल से बची नहीं, इसका मुझे अत्यंत दुःख है।

मंजुला की उम्र ज्यादा बड़ी नहीं है, तीस के भीतर ही है। आंखें गोल तथा काली। गाल अंगूर की तरह लम्बे तथा भरे हुए। गर्दन सुराही की तरह पतली। पैंतीस, छब्बीस, छत्तीस का नाप बोईल चिकन जैसा है, जिसे देखकर किसी भी तबके के आदमी के मुंह में मिठास उत्पन्न हुए बिना नहीं रहेगी।

मंजुला की शादी बचपन में हुई थी। पंद्रह वर्ष की उम्र में वह पति के घर में रहने को गई थी। सिर्फ़ दो साल के सीमित ब्याहता जीवन में उसका पति स्वर्ग सिधार गया। ज़िन्दगी के सुख उसने देखे नहीं थे। खुशियों से वह अनजान थी। एकदम सुबह उठकर वह कोआपरेटिव सोसाइटी में पहुंच जाती। उसका काम पापड़, बड़ी, अचार तथा खाने की अन्य चीजें बनाती हुई औरतों पर नज़र रखने का था। जवानी को मसल डालने की उसने भरपूर चेष्टा की थी। किन्तु उसे क्या पता कि ...

'इश्क पर जोर नहीं, यह है वह आतिश गालिब। कि लगाये न लगे और बुझाये न बने।''

केशवलाल ने पिछले तीन महीनों से प्रेम के सारे हथियारों समेत उस पर हमला किया था, और 'बाई हुक और बाई क्रुक' मंजुला को फांसने की रात-दिन कोशिश कर रहा था।

आखिर मंजुला भी एक औरत थी। थोड़े दिन में ही उसकी कमजोरी उस पर सवार हो गयी। चेहरे का रंग बदल गया। गर्दन पर स्थिर रहने वाले जूड़े में से दो नाजुक चोटियां उसकी पीठ पर झूल पड़ीं। सफ़ेद साड़ी की जगह गुलाबी, लाल, जामुनी, नीले, पीले रंग की साड़ियों ने ले ली। बलाउज़ कसने लगे। शरीर गदरा गया।

'ओ पापे (बड़े भाई)।' सरदारजी ने मेरी खोली के निकट से गुजरते हुए कहा, ''आजकल केशवलाल कहां गायब रहता है?''

मैंने आश्चर्य से उनकी ओर देखा।

'मालूम होता है बुड्ढा किसी मोटे चक्कर में है।'

'होगा' मैं समझकर भी नासमझ बनकर बोला।

'रात को जरा नज़र रखो वरना चाल की इज्जत खाक में मिल जाएगी।' कहते हुए सरदारजी थोड़ा हंसे और अपने कमरे की ओर चले गये।

उनकी बात से मुझे लगा कि चाल के लोग चौंक गए थे। आराम से केशवलाल को फंसाने की तरकीबें बन रही थीं। पर वह भी तो बेवकूफ नहीं था। आज तक कोई उसे सप्रमाण नहीं पकड़ सका था, जबकि शक सभी को था। और सिर्फ़ शक से कुछ नहीं किया जा सकता था।

रात के दो बजे।

केशवलाल का दरवाजा खुला। मैं अपनी खोली में जागता बैठा था। रात के सन्नाटे में लेख तैयार करने में थोड़ी सुविधा होती है। और पत्रिकाओं के लिए पन्ने भरने का भी मैंने यही समय चुना है।

धीरे-धीरे आगे बढ़ केशवलाल की लंबी परछाईं मेरी खोली के करीब आयी हौर ठहर गई। मैंने सवालिया दृष्टि से दरवाजे की ओर देखा। परछाईं आगे बढ़ने में हिचकिचा रही थी। एकाएक केशवलाल जैसे नीचे जा रहा हो, ऐसे गर्दन ऊंची कर गुज़र गया। मेरे इत्मीनान के लिए सीढ़ियों पर जूतों की आवाज करता हुआ नीचे उतरा और जूते हाथों में

उठा आहिस्ता-आहिस्ता वापस उपर चढ़ गया। मंजुला की खोली को हल्के से धक्का दिया, भीतर घुसा और दरवाजा बंद कर दिया जो मुझसे अनजान नहीं था।

'क्यों? आज देरी हो गयी?' मंजुला ने धीरे से पूछा। फिर भी अपनी खोली में मैं सुन सकता था।

'क्या करूं?' केशवलाल ने भर्राई हुई उत्तेजित आवाज़ में कहा, "उस नालायक को मौत भी नहीं आती। जब देखो तब शिकारी कुत्ते की तरह बैठा रहता है।"

मैं थोड़ा हंसा।

'शी ई ई ई ई।' मंजुला ने उसे धीरे से बोलने का संकेत किया।

'मंजू।' केशवलाल ने सुर बदलते हुए प्यार से कहा, 'तू सुन्दर क्यों है?'

'मुझे क्या पता?'

'फिर भी ...?'

'मेरी मां की चमड़ी गोरी थी, शायद मैं उन पर पड़ी होऊंगी।'

दोनों चुप हो गए।

मंजुला थोड़ा रूकी और फिर बोली, 'हे केशु! तुम शादी किसलिए नहीं करते?'

केशवलाल छूटते ही हंस पड़ा और सहसा रूक गया (कदाचित मेरी याद आ गयी होगी)।

एक दिन मैंने भी यह सवाल उससे पूछा था और जवाब में उसने कहा था—'मेरी इच्छा की बात है।'

'प्यार किसलिए करते हो?'

'दिल को जवान रखने के लिए।'

'भोली-भाली औरतों के साथ फरेब करने से क्या दिल जवान रहता है?'

'एकदम सही।' उसने दृढ़ता से कहा था, 'प्यार में वफादारी करने वाले को दर्द मिलता है और बेवफाई करने वाले को खुशी।'

आज मंजुला ने भी वही सवाल किया था। उसने एकदम नया जवाब दिया।

'क्या करूं? मेरा चेहरा कार्टून जैसा है। कोई लड़की शादी करने के लिए तैयार नहीं।'

'मैं खोज लाऊं तो?'

'मेरा जन्म सार्थक हो जाएगा।'

'तुम्हें कैसी लड़की अच्छी लगती है?'

'तुम्हारे जैसी।'

यह जवाब सुनकर मंजुला अवश्य खुश हुई होगी।

'तुम मुझसे शादी करोगे?'

केशवलाल ने 'हां' कहा (कहने मात्र के लिए)

'किन्तु मैं तो रसोई में जीरो हूं।'

'उससे क्या फर्क पड़ेगा?'

'तुम्हें गरमागरम दूधपाक कौन खिलायेगा?'

'तुम्हारा दिल।'

दोनों एकसाथ हंस पड़े।

घड़ी में तीन का घंटा बजा ... चार का बजा ... दो घंटे बीत गए।

मुझे आश्चर्य हुआ। पैन बंद कर मैं कुर्सी पर से उठा और बाहर निकलकर मंजुला की खोली की ओर अचरजभरी दृष्टि से देखा। दरवाजे पर गोदरेज का ताला लटक रहा था। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया। क्षण भर के लिए मैं विमूढ़ हो उठा।

'छोकरे'।

एक अस्फुट आवाज मेरे कानों से टकराई। मैंने पीछे मुड़कर देखा। रमजान चाचा चारपाई पर जागे बैठे थे।

'वहां क्या देख रहे हो?' मुझे संकेत से निकट बुलाते हुए उन्होंने पूछा।

उन्होंने उंगली ऊंची कर मंजुला को खोली दिखायी।

मैंने कहा, 'चाचा! मैं तो नीचे चाय पीने जा रहा था, ईरानी के होटल में।'

'रात को चार बजे क्या तुम्हारा बाप चाय देगा? बैठ यहां।'

मैं चारपाई पर चुपचाप बैठ गया। रमजान चाचा लुच्चाई से हंसे। एक गहरा खंखार लेकर थूका और कुरते में से चाभी का गुच्छा निकालकर कहा, 'फंस गया।'

'कौन?'

'तुम्हारा चाचा—केशव।'

मैंने चौंककर रमजान चाचा की आंखों में देखा।

'औरत के कमरे में जाकर रात को आशिकी करता था पाजी। मैंने ताला ही लगा दिया। अब देखता हूं कौन खोलता है?'

'हूं ...।' सस्पेन्स मूवी के दर्शक की तरह मेरा मुंह खुल गया। ऊपर का होंठ ऊपर और नीचे का नीचे रह गया। आंखें गोल-गोल चक्कर लेने लगीं।

'ए सूअर।' माइकेल को सीढ़ियों पर लथड़ता देखकर रमजान चाचा ने पुकारा।

'क्या है?' माइकेल ने नज़दीक आते हुए कहा। उसके मुंह से ठर्रे की गंध फैल रही थी।

'लानत है तुझ पर।' रमजान चाचा बड़बड़ाए, 'चौबीस घंटे नशा करता है। अरे, चाल की कुछ खबर है?'

माइकेल ने बन्द होती हुई आंखों को दो अंगुलियों द्वारा खोलने का प्रयत्न किया।

'क्या हुआ, चाचा?' उसने पूछा।

'बैठ यहां।'

माइकेल मेरी बगल में बैठ गया।

रमजान चाचा ने लम्बी सफ़ेद दाढ़ी पर हाथ फरते हुए कहा, 'अपना केशव है न ...'

'हां-हां, चाचा! क्या वह मर गया?'

रमजान चाचा ने हंसते हुए उसे सारी बात कह सुनाई। माइकेल का दिमाग हाथ से गया।

'क्या कह रहे हो, चाचा।' उसने कहा, 'मुझे पहले क्यों नहीं बताया?'

'तुम्हें फुरसत मिले, तब न?'

माइकेल ने जेब में हाथ डालकर रामपुरी चाकू बाहर निकाला। कट् ... कट् ... कट् ... आवाज उठी और चाकू खुल गया। मेरे होश उड़ गए।

'चाचा।' चाकू को पंजे में जकड़ते हुए उसने गंभीरतापूर्वक कहा, 'दरवाजा खोलो।'

रमजान चाचा निःशब्द बैठे रहे।

'चाचा! मैं उसका खून पी जाऊंगा। दरवाजा खोलो।'

'नहीं खोलूंगा।' रमजान चाचा ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया और गुदड़ी ओढ़कर सो गये।

माइकेल देखता ही रह गया।

पीरू के कमरे का दरवाजा खुला और छह-सात मवाली सीढ़ी के तरफ आगे बढ़े। अंदर खेला जा रहा पत्ते का खेल पूरा हो गया था।

रमजान चाचा ने सिर पर से गुदड़ी धीरे से हटाई और पुनः उठ बैठे।

'ए पीरू।'

पीरू चाचा के निकट ठहर गया। उसके साथ मवाली भी ठहर गए।

'क्या है, चाचा?' उसने रूखाई से कहा। उसकी आंखें माइकेल के खुले चाकू पर ठहरी हुई थीं।

रमजान चाचा ने उसे बात समझाई और वह भी चौंक उठा। हम लोग साश्चर्य एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे।

'ताला खोलो, चाचा।' गुस्से से लाल होकर कहा उसने और रमजान चाचा गुदड़ी ओढ़कर सो जाएं, इससे पहले ही गर्दन पकड़कर खड़ा कर दिया। माइकेल ने उन्हें पीछे से धकेला। कुछ सोचते हुए चाचा मंजुला की खोली की ओर बढ़े। हम सभी जुलूस की तरह उनके पीछे चले। खोली के पास आते ही रमजान चाचा ने छिपा रखा नया ताला निकाला और एकाएक दरवाजे पर लगा दिया। काम इतनी फुर्ती से हुआ था कि पहले तो किसी को पता ही न चला किन्तु जब रमजान चाचा चारपाई पर जाकर लेट गए, तभी पता चला कि दरवाजे पर दो ताले झूल रहे हैं।

कमरों की बत्तियां एक के बाद एक जल उठीं। दरवाजे खुल गए। पुरुष डंडा, बाम्बू, हथौड़ी और जो कुछ भी हाथ में आया, लेकर बाहर कूद पड़े। आंखें मीचते हुए वे एक-दूसरे से प्रश्न करने लगे—

'चोर कहां है?'

'कितना माल गया?'

'नज़र रखो। यहीं कहीं छिपा होगा।'

'होशियार रहना। भागने न पाये।'

जब उन्हें पता चला कि दौलत के चोर के बदले दिल का चोर फंसा था, तो उनके चेहरे निराश हो उठे।

माइकेल ने चारपाई के निकट आकर गुदड़ी खींची। रमजान चाचा गुस्से में बड़बड़ा उठे—'क्या है?'

'ताला खोलिए।' मैंने धीमे से कहा।

'नहीं खुलेगा।'

'बेचारों का जी घबरा रहा होगा।'

'घबराने दो।'

'चाचा!' पीरू ने चारपाई पर बैठते हुए कहा, 'अब आप ही बताइए, केशवलाल का क्या करें?'

रमजान चाचा ने गुदड़ी सिर पर ओढ़ ली और भीतर से ही कहा, 'कुछ भी नहीं। सुबह पुलिस को बुलवाकर नमकहराम को जेल की हवा खिलाऊंगा।'

औरतों ने कमरों में से झांककर देखा और वातावरण की गंभीरता समझकर एक के बाद एक बाहर निकल आयीं।

''मैं तो पहले से ही जानती थी।''

भीतर-ही-भीतर कानाफूसी होने लगी।

'मंजू विधवा नहीं, बला है बला।'

'कहती थी, सुबह काम पर जाती हूं। अब पता चला चुड़ैल कहां जाती थी।'

'पीरू!' माइकेल ने उसे एक तरफ ले जाकर कहा।

'तुम्हारा क्या विचार है?'

'मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है।'

'सोचो, सोचो।' सरदारजी ने सबों के बीच घुसते हुए कहा, 'यह चाल की इज्जत का सवाल है।'

'एक तरीका है।' मैंने कहा और सभी के चेहरे मेरी तरफ मुड़े। माइकेल ने चाकू बंद करके जेब में रख लिया। उसका नशा उतर गया था। अब वह पूरी तरह से स्वस्थ था।

'क्या?' उसने पूछा।

'केशवलाल की शादी करा दें।'

'शादी?'

'ऐसा मौका फिर हाथ नहीं आयेगा, माइकेल।' पीरू ने कहा, 'केशवलाल की शादी यानी चाल की आबादी। एक बला टलेगी।'

'बात समझने की है।' सरदारजी बोले।

'मैं केशवलाल को समझा देता हूं।' कहते हुए गोपाल गुजराती टोपी थोड़ी तिरछी कर रिंग-लीडर की तरह आगे बढ़ा और मंजुला के बंद दरवाजे के सामने खड़े होकर गुहार लगाई।

'भाई केशव ...'

'कौन ...?' भीतर से ठंडा प्रश्न आया।

'घबराना मत। ... मैं गोपाल हूं, तुम्हारा जातभाई।'

'गोपू ...' भीतर से पुनः आवाज़ आयी। मैं तो मर गया हूं। बचाओ, मेरी इज्जत का दिवाला निकल गया है।'

'बचने का एक ही रास्ता है।'

'जल्दी बोलो।'

'तुम मंजुला बहन के साथ शादी करने को तैयार हो?'

'तुम कहोगे तो मैं तुम्हारे साथ भी शादी करने को तैयार हूं।'

''मैं शादीशुदा हूं ...' गोपाल ने मज़ाक में कहा और उसके साथ हम सभी हंस पड़े—सिर्फ़ रमजान चाचा को छोड़कर। दूसरे दिन केशवलाल ने अग्नि के समक्ष सात फेरे पूरे किए। तभी हमारी लीली कोर्ट के चाचा उन्मुक्त हो हंसे थे, यह मुझे आज भी याद है। □

मेरी बाइसिकल

पितरस बुखारी

पितरस बुखारी उर्दू साहित्य का ऐसा नाम है जिसको सुनते ही उदास मन के सारे कपाट खुल जाते हैं और उदासी न जाने कहां गायब हो जाती है। जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं को मजेदार भाषा में अभिव्यक्त करने में सिद्धहस्त पितरस बुखारी की एक मजेदार रचना 'मेरी बाइसिकिल।'

बरामदे में आया तो बरामदे के साथ ही एक अजीबोगरीब चीज़ पर नज़र पड़ी। ठीक तरह से पहचान न सका कि क्या चीज़ है। नौकर से दरियाफ्त किया, "क्यों बे, ये क्या चीज है?"

नौकर बोला, "हुजूर, ये बाइसिकल है।"

मैंने कहा, "बाइसिकल। किसकी बाइसिकल?"

कहने लगा, "मिर्जा साहब ने भिजवाई है आपके लिए।"

मैंने कहा, "और जो बाइसिकल मिर्ज़ा साहब ने कल रात भेजी थी, वो कहां है?"

कहने लगा, "यही तो है।"

मैंने कहा, "क्या बकता है? जो बाइसिकल मिर्ज़ा साहब ने कल रात भेजी थी, वो बाइसिकल यही है।"

कहने लगा, "जी हां!"

मैंने कहा, "अच्छा!" और फिर उसे देखने लगा, "इसको साफ़ क्यों नहीं किया?"

"हुज़ूर दो-तीन दफ़ा साफ़ किया है।"

"और तेल लाया?"

"हां, हुजूर लाया हूं।"

"दिया?"

"हुजूर, वो जो तेल देने के सुराख होते हैं, नहीं मिलते।"

"क्या वजह?"

"हुजूर धुरों पर मैल और जंग जमा है। वो सुराख बीच में ही दब-दबा गए हैं। रफ्ता-रफ्ता मैं उस चीज़ के करीब आया, जिसको मेरा नौकर बाइसिकल बता रहा था। इसके मुख्तलिफ़ पुर्जों पर गौर किया, तो साबित हो गया कि बाइसिकल है। लेकिन जल्दी ही यह भी साफ़ जाहिर हो गया कि हम रहट और चरखे तथा इसी तरह की नई खोजों से पहले की बनी हुई है। पहिए को घुमा-घुमा कर वो सुराख तलाश किया, जहां किसी जमाने में तेल दिया जाता था। लेकिन अब इस सुराख में से आमदोरफ्त का सिलसिला बंद था। चुनांचे नौकर बोला, "हुजूर, वो तेल तो इधर-उधर बह जाता है। बीच में तो जाता ही नहीं।"

मैंने कहा, "अच्छा, ऊपर ही ऊपर डाल दो। ये भी मुफ़ीद होता है।"

आखिरकार बाइसिकल पर सवार हुआ। पहला ही पांव चलाया, तो ऐसा महसूस हुआ कि जैसे कोई मुरदा हड्डियां चटखा रहा है। घर से निकलते ही कुछ थोड़ी सी उतराई थी। उस पर बाइसिकल खुद-ब-खुद चलने लगी। लेकिन इस रफ्तार से कि जैसे तारकोल जमीन पर बहता है और साथ ही मुख्तलिफ हिस्सों से तरह-तरह की आवाजें बरामद होनी शुरु हुईं। इन आवाजों के मुख्तलिफ़ गिरोह थे। खट् खड़ खरर खरड़ की कबील की आवाजें मडगार्डों से आती थीं। चर चरह की किस्म के सुर जंजीर और पैडल से निकलते थे। जंजीर ढीली थी। मैं जब कभी पैडल पर जोर मारता था, तो जंजीर में एक अंगडाई सी पैदा होती थी, जिससे वो तन जाती थी और चड़चड़ बोलने लगती थी और फिर ढीली हो जाती थी। पिछला पहिया घूमने के अलावा झूमता भी था। यानि एक तो आगे को चलता था, इसके अलावा दाहिने से बाएं और बाएं से दाहिने को भी हरकत करता था। चुनांचे सड़क पर जो निशान पड़ जाता था, उसको देखकर ऐसा मालूम होता था, जैसे कोई नशा किया हुआ सांप लहरा कर निकल गया है।

मडगार्ड थे तो सही, मगर पहियों के ऐन ऊपर न थे। इनका फ़ायदा सिर्फ़ ये मालूम होता था कि इंसान उत्तर की ओर सैर को निकले और आफ़ताब पश्चिम में डूब रहा हो, तो मडगार्डों की बदौलत टायर धूप से बचे रहेंगे। अगले पहिए के टायर में एक बड़ा सा पैबंद लगा था, जिसकी वजह से पहिया हर चक्कर में एक दफ़ा लम्हा भर को ज़ोर से ऊपर उठ जाता था। और मेरा सिर पीछे को यूं झटके खा रहा था जैसे कोई लगातार ढोडी के नीचे मुक्के मार रहा हो। पिछले और अगले पहिए को मिलाकर चूं-चूं, पाट-पाट की सदा निकल रही थी। जब उतार पर बाइसिकल ज़रा तेज़ हुई तो फिज़ां में एक भूचाल सा आ गया और बाइसिकल के कई और पुर्जे जो अब तक सो रहे थे, जागकर बोलने लगे।

इधर उधर के लोग चौंके। माओं ने अपने बच्चों को सीने से लगाया। खड़र-खड़र के बीच में पहियों की आवाज़ जरा सुनाई दे रही थी, इसलिए चूं-चूं फट ने चूं-चूं फट की सूरत इख़्तियार कर ली थी। तमाम बाइसिकल किसी मुश्किल अफ़्रीकी जबान की गर्दानें दोहरा रही थी।

इस क़दर तेज़ रफ्तारी बाइसिकल की नाजुक तबीयत पर भारी पड़ी। चुनांचे उसमें यकलख़्त दो तब्दीलियां वाके हो गईं। एक तो हैंडल एक तरफ को मुड़ गया, जिसका नतीजा यह हुआ कि मैं जा तो सामने को रहा था, लेकिन मेरा तमाम जिस्म दाएं तरफ को मुड़ा था। इसके अलावा बाइसिकल की गद्दी अचानक छह इंच के करीब नीचे बैठ गई। चुनांचे जब पैडल चलाने के लिए मैं टांगे ऊपर-नीचे कर रहा था, तो मेरे घुटने मेरी ठोडी तक पहुंच जाते थे। कमर दोहरी होकर बाहर निकली थी और साथ ही अगले पहियों की अठखेलियों की वजह से सर बराबर झटके खा रहा था।

गद्दी का नीचा हो जाना बहुत तकलीफ देह साबित हुआ, इसलिए मैंने मुनासिब यही समझा कि इसे ठीक कर लूं। चुनांचे मैंने साइकिल को ठहरा लिया और नीचे उतरा। बाइसिकल के ठहर जाने से यकलख़्त जैसे दुनिया में खामोशी-सी छा गई। ऐसा मालूम हुआ, जैसे मैं किसी रेल के स्टेशन से निकल कर बाहर आ गया हूं। जेब से औज़ार निकाला, गद्दी को ऊंचा किया, कुछ हैंडल को ठीक किया और दुबारा सवार हो गया।

दस कदम भी चलने न पाया था कि अब के हैंडल यकलख़्त नीचा हो गया। इतना कि गद्दी अब हैंडल से कोई फुट भर ऊंची थी। मेरा तमाम जिस्म आगे को झुका हुआ था, तमाम बोझ दोनों हाथों पर था, जो हैंडल पर रखे थे और बराबर झटखे खा रहे थे। आप मेरी हालत का तसव्वुर करें, तो आपको मालूम होगा कि मैं दूर से ऐसा मालूम हो रहा था जैसे कोई औरत आटा गूंद रही हो। मुझे इस समानता का अहसास बहुत तेज था, जिसकी वजह से मेरे माथे पर पसीना आ गया। मैं दाएं-बाएं लोगों को कनखियों से देखता जाता था। यूं तो हर शख़्स मील भर पहले से ही मुड़-मुड़ कर देखने लगता था, लेकिन इनमें कोई ऐसा न था, जिसके लिए मेरी मुसीबत तबीयत खुश कर देने का कारण न हो।

हैंडल तो नीचा हो ही गया था, थोड़ी देर बाद गद्दी भी नीचे हो गई और मैं एकदम ज़मीन के क़रीब पहुंच गया। एक लड़के ने कहा—देखो, ये आदमी क्या कर रहा है। गोया इस बदतमीज के नज़दीक मैं कोई करतब दिखा रहा था। मैंने उतर कर फिर गद्दी और हैंडल को ऊंचा किया। बाइसिकल पर सवार हो गया और अंधाधुंध पांव चलाने लगा।

मुश्किल से बीस कदम गया हूंगा कि मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे ज़मीन यकलख़्त उछलकर मुझसे आ लगी है, आसमान मेरे सर से हटकर मेरी टांगों के बीच में से गुजर गया है और इधर-उधर की इमारतों ने एक दूसरे के साथ अपनी जगह बदल ली है। हवास बजा हुए, तो मालूम हुआ मैं ज़मीन पर इस बेतकल्लुफ़ी से बैठा हूं गोया बड़ी मुद्दत से मुझे इस बात का शौक था, जो आज पूरा हुआ। ईर्द-गिर्द कुछ लोग जमा थे, जिनमें से

अक्सर लोग हंस रहे थे। मैंने अपने आसपास पर गौर किया, तो मालूम हुआ कि मेरी बाइसिकल का अगला पहिया बिल्कुल अलग होकर लुढकता हुआ सड़क के उस पार जा पहुंचा है और बाकी बाइसिकल मेरे पास पड़ी है। मैंने फौरन अपने आप को संभाला। जो पहिया अलग हो गया था, उसको एक हाथ में उठा लिया। दूसरे हाथ में बाकी मांदा बाइसिकल को थामा और चल खड़ा हुआ। ये महज एक आकस्मिक हरकत थी, वरना वो बाइसिकल मुझे इतनी अज़ीज़ हरगिज़ न थी कि मैं उसको इस हालत में साथ लिए फिरता। ☐

अनुवादक : डॉ. राजेश कुमार

शास्त्री जी

गुरनाम सिंह तीर

कई बार जिंदगी में तीर और तुक्के चलने लगते हैं तो लोग आपको चमत्कारी जीव मान लेते हैं। ऐसा ही शास्त्री के साथ हुआ। उनकी कुछ बातें पोथी-पतरा देखने के बाद सच हो गयीं तो हेमा डाकू अपने दांत के दर्द के इलाज के लिए उनके पास भागा आया और क्या-क्या किया इन चमत्कारी शास्त्री जी ने, बता रहे हैं पंजाबी के व्यंग्यकार गुरनाम सिंह तीर।

बहुत से लोग सरदार बहादुर, राय बहादुर, खान बहादुर बने घूम रहे हैं, न जाने उनमें यह बहादुरी कहां से आ गयी? बस, अंग्रेजों की खिदमत की और खिताब मिल गया। ... हमें तो जनता से खिताब मिला है लोग हमें श्री 'वेलाराम शास्त्री जी' कहकर पुकारते हैं। हमने शास्त्र न पढ़े, न देखे, यहां तक कि कभी जाने भी नहीं लेकिन शास्त्रों के पंडित के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर ली।

सुना है, जिन्दगी के हादसे आदमी से काफी कुछ करवा लेते हैं, यह भी एक हादसा ही था कि उस दिन जब हमारी फौज को कूच करना था, ऐन मौके पर कोई पंडित-ब्राह्मण नहीं मिला। मौके को संभालने के लिए कुछ साथी मुझे पकड़ कर ले गये। मैं चला गया। मुझे वहां कौन सी तोप चलानी थी। बस कुछ शब्द ही तो बोलने थे। युद्ध के मैदान में जा रहे जवानों की हिम्मत ही बंधानी थी। कमांडर साहब ने मेरी चुटिया देखी और फिर जवानों से मेरा परिचय करवाते हुए कहा, "बड़ी खुशी की बात है आज हमारे बीच शास्त्रों के प्रसिद्ध विद्वान श्री वेलाशम जी 'शास्त्री' मौजूद हैं। यह हमारे जवानों को आशीर्वाद देंगे।

मैंने ईश्वर को याद किया। वह कहीं नजदीक ही बैठा सुन रहा था। उसने मेरे सिर पर हाथ रखा और मैंने बोलना शुरु किया।

"मेरे वतन के बहादुरो। शास्त्रों में लिखा है कि जब भोजन का समय हो जाये तो सौ काम छोड़कर भोजन करना चाहिए और जब भजन का समय हो तो सौ भोजन छोड़कर भजन करना चाहिए और जब धर्मयुद्ध का समय आ जाए तो सौ भजन छोड़कर धर्मयुद्ध में कूद पड़ना चाहिए—" सुनते ही फौजियों में जोश का समुद्र ठाठें मारने लगा। मेरे भीतर भी जोश लहराने लगा और मैंने महसूस किया कि मैं सचमुच ही शास्त्रों का विद्वान बन गया हूं। मैंने फिर कहना शुरु किया : "शास्त्रों में लिखा है कि तीन दूनी छह चीजें आदमी के बस में नहीं हैं। ईश्वर ने उन्हें खुद अपने वश में रखा है। वे चीजें हैं। जीवन-मृत्यु, लाभ-हानि, यश-अपयश। आदमी कितना ही स्वस्थ क्यों न हो, अगर उसकी मौत आ गयी तो उसे कोई दवा-दारु ठीक नहीं बैठती और अगर उसकी जिंदगी बाकी है तो वह चाहे मौत के किनारे क्यों न खड़ा हो, उसे कोई मार नहीं सकता। शास्त्रों में लिखा है, 'प्रभु भावे बिन स्वास ते राखे। इसी तरह लाभ हानि की बात है। कई बार मिट्टी से सोना बन जाता है और कई बार सोना मिट्टी हो जाता है। यही बात यश-अपयश के बारे में कही जा सकती है। अगर ईश्वर किसी को यश देना चाहे तो चोरों, डाकुओं के किस्से छपने लगते हैं और अगर ईश्वर अपयश देना चाहे तो भक्तों की भी निंदा होने लगती है। इसलिए मेरे देश के बहादुरों, यह समझ लो कि सभी कुछ ईश्वर के हाथ में है और आजकल ईश्वर हमारी तरफ है। शास्त्रों में लिखा है कि 'जिधर भगवान, उधर कल्याण। इसलिए तुम जहां भी जाओगे जीत तुम्हारे पांव चूमेगी।"

इस प्रकार जवानों को आशीर्वाद देकर मैं ईश्वर का लाख-लाख शुक्र मनाता वापस चला आया।

जवानों को आशीर्वाद देते समय मेरी जो फोटो खींची गयी थीं, वे अखबारों में छपीं, चारों ओर मेरे नाम की चर्चा होने लगी। सभी मुझे वेलाराम की जगह शास्त्री जी कहकर बुलाने लगे। कहीं भी कुछ होता, लोग कहते, "शास्तरी जी से पूछो, वही बतायेंगे कि इस संबंध में शास्त्रों में क्या लिखा है।"

औलख साहब के पास बहुत सुंदर कुत्ता था। उसकी वफादारी के किस्से प्रसिद्ध थे। एक बार न जाने किसी मनहूस की नजर लगी कि वह पागल हो गया। औलख साहब ने यह पूछने के लिए एक आदमी मेरे पास भेजा कि अब क्या करना चाहिए, मैंने तुरंत जवाब दिया, "शास्त्रों में लिखा है कि होनी बड़ी बलवान है। कई बार अपने ही वफादार साथी पर हाथ उठाना पड़ता है। अपने ही कुत्ते को गोली मारनी पड़ती है, क्योंकि पता नहीं होता कि वह किसे काट खाये। हो सकता है कि वह अपने ही मालिक को काट खाये। फ्रांस के एक प्रोफेसर ने कुत्ता पाला। वह उसे अंग्रेजी सिखाना चाहता था, लेकिन कुत्ता एक भी

शब्द न सीख पाया। शास्त्रों में लिखा है कि कुत्ता-कुत्ता है और तोता-तोता। अगर कोई तोते को कुत्ता बनाना चाहे या कुत्ते को तोते की तरह पढ़ाना चाहे तो उसे निराशा के सिवा कुछ नहीं मिलता। परन्तु उस प्रोफेसर ने निराश होकर भी जिद नहीं छोडी। उसने कुत्ते को भूखा रखना शुरू किया और कहा कि जब तक बोलेगा नहीं, उसे खाना नहीं मिलेगा। आखिर एक दिन भूखा कुत्ता छिपकली खा गया। वह पागल हो गया और उसने अपने मालिक को काट खाया उसके काटने से प्रोफेसर पागल हो गया और सारी अंग्रेजी भूल गया। वह कुत्ते की तरह भौंकने लगा ... इसलिए शास्त्रों में ठीक ही लिखा है कि कुत्ता पागल हो जाये तो उसे जल्द से जल्द मार डालना चाहिए। मेरी बात पर अमल करते हुए औलख साहब ने अपने कुत्ते को मार डाला।

बूटा कुम्हार और उसकी पत्नी आपस में लड़ पड़े। पत्नी घर से निकल गयी और सारा दिन बाहर रही। बूटा घबराया हुआ मेरे पास आया। उससे सारी बात सुनकर मैंने कहा, "तुम फिक्र न करो। शास्त्रों में लिखा है कि रूठी हुई स्त्री ज्यादा देर तक घर से बाहर नहीं रह सकती। तुम्हारी पत्नी किसी न किसी गधे की पूंछ पकड़ कर जरूर घर लौट आएगी।"

ऐसा ही हुआ।

बूटा की पत्नी अपने गधे, मोती सागर की पूंछ पकड़े उसके पीछे-पीछे आ रही थी और कहती जा रही थी।

"मोती सागर, मुझे तंग न करो, मैं तुम्हारे मालिक से लड़ी हुई हूं। मैं उसके घर नहीं जाऊंगी। तुम मुझे क्यों वहां लिए जा रहे हो? और यह कहती हुई वह घर लौट आयी।

हेमा डाकू का दांत डाख रहा था। वह चीखता चिल्लाता हुआ डाक्टर के पास जाने के बजाय मेरे पास आया और उसने कहा, "शास्त्री जी मैं बहुत बहादुर हूं। मेरा कोई सिर काट डाले, या मेरे सीने में गोली मार दे, मैं उफ तक नहीं करूंगा। लेकिन यह दांत का दर्द सहन नहीं होता इसके बारे में शास्त्रों में क्या लिखा है?"

मैंने कहा, "चौधरी हेम सिंह जी, शास्त्रों में लिखा है कि दांत का दर्द दिमाग की नसों को काटता है तो आदमी की चीखें निकल जाती हैं। जो लोग दांतों की देखभाल नहीं करते, वे दुःख उठाते हैं, जो लोग खाने-पीने में परहेज करते हैं, वे दांतों के दर्द से काफी हद तक बचे रहते हैं। शास्त्रों में यहां तक लिखा है कि दांतों पर कितनी बार दातून घिसायी जाये, और साथ ही उतनी बार 'राम-राम' भी कहा जाये, तो आदमी डाके मारते रहने पर स्वर्ग में जगह पाता है।"

बिशना लोहार की घोड़ी के पेट में सख्त दर्द था। वह मेरे पास आया और कहा, "शास्त्री जी घोड़ी के बारे में क्या किया जाये? दर्द के मारे तड़प रही है।"

मैंने उसे धीरज बंधाते हुए कहा, "बिशन सिंह जी, शास्त्रों में लिखा है कि शरीर चाहे आदमी का हो या जानवर का, अगर उसे किसी बीमारी का शिकार बनना है तो बनकर

ही रहेगा। शास्त्रों में हर कष्ट का उपाय भी दिया गया है। शास्त्रों में गुग्गल की बहुत प्रशंसा है। यदि जानवर को गुग्गल खिलायी जाये तो उसका ही नहीं उसके मालिक का भी दुःख दूर हो जाता है।''

मिलखी राम अवतार ने मेरे पास आकर कहा, ''शास्त्री जी मैं दिन रात महेनत करता हूं, पुरानी गली सड़ी, जड़ी बूटियों में से सोना पैदा करके पत्नी को देता हूं इसके बावजूद आधी रात को जब घर लौट कर आता हूं तो वह झाड़ू हाथ में लेकर मुझे मारने को आती है। बताइये, मैं क्या करुं?''

मैंने हंसते हुए कहा, ''आप बहुत भोले हो। स्त्रियों के स्वभाव पर शास्त्रों में बहुत कुछ लिखा है। स्त्री को मर्द की सिर्फ कमाई की ही जरूरत नहीं होती वह उसकी जुबान के प्यार के कुछ शब्द भी सुनना चाहती है। अपनी सुंदरता की प्रशंसा भी करवाना चाहती है। एक शास्त्र में तो यहां तक लिखा है अगर आदमी उसे यह एहसास दिला दे कि उससे ज्यादा सुन्दर और पतिभक्त स्त्री संसार में और कोई नहीं तो वह पति के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाती है। एक और शास्त्र में लिखा है कि स्त्री की निंदा करना मुसीबत मोल लेना है। सो आप क्या जानो स्त्री स्वभाव को? पंसारी की दुकान चलाना आसान है लेकिन स्त्री के संग जीना मुश्किल। अभी भी गिरे हुए बेरों का कुछ बिगड़ा नहीं। पत्नी को देवी के बराबर दर्जा देना शुरु कीजिए। वह सचमुच देवी बन जायेगी।

एक दिन बक्षी पन्नालाल मेरे पास आये और रो पड़े। कहा—''मैंने आज तक किसी की निंदा चुगली नहीं की, न ही किसी से ईर्ष्या की है। फिर भी चौधरी तीखाराम का बेटा कंडामल हर वक्त मेरी निंदा करता रहता है। इसका क्या इलाज हो?

मैंने कहा, ''बक्षी साहब, कितना अच्छा होता अगर आपने शास्त्रों का अध्ययन किया होता। शास्त्रों में एक जगह मोटे अक्षरों में लिखा है कि निंदक की जबान काट डालनी चाहिए और निंदा सुनने वाले के कान। अब आप ही बतायें शास्त्र इससे ज्यादा और क्या बता सकते हैं। □

अनुवादक : तरसेम गुजराल

कबिरा भया उदास

के.एल. गर्ग

पंजाबी भाषा में के.एल. गर्ग हास्य व्यंग्य के परिचित रचनाकार हैं। पंजाबी भाषा में पांच हास्य काव्य संग्रह, दो उपन्यास तथा चार कथा संग्रह हैं। गुजराती में एक व्यंग्य संकलन 'खरी खोटी दुनिया' छप चुका है। प्रस्तुत है उन्हीं के द्वारा अनूदित कबीर की उदासी के माध्यम से समकालीन परिवेश की विसंगतियों का उद्घाटन।

व्यंग्य लेखक कबीर आजकल बहुत उदास रहता है।

"कबीर उजड्ड है। उसे तो चील का नाम कोको भी नहीं आता। वह किस यूनीवर्सिटी में पढ़ा है? किस प्रोफेसर या रीडर के लेक्चर सुने हैं उसने? कबीर तो आप मानता है 'मसि कागद छुयौ नहीं, कलम गह्यौ नहीं हाथ'। बताइये जब वह खुद ही मानता हो कि उसने कागज और स्याही छूकर नहीं देखी, कलम कभी हाथ में पकड़ी नहीं तो फिर इतने बड़े-बड़े वृहद ग्रंथ क्या जादू की छड़ी से लिख मारे। दूसरे से लिखवा कर ही विद्वान बने फिरते हैं। रेडीमेड इंटलेक्चुअल। ऐसे जालसाज पर तो कोर्ट कचहरी में मुकदमा चलाया जाना चाहिए।"

एक विश्वविद्यालय नुमा विद्वान रीडर ने तो सचमुच ही कबीर और उसके चेलों के खिलाफ कोर्ट में रिट पटीशन दायर कर भी दी है। वे अपना सारा पोथी-पंथ उठाये कोर्टों की परिक्रमा करते, सिगरेट के कश लगाते घूमते कहते जा रहे हैं :

"इंसाफ हमारा नारा है। कबीर का सच या झूठ करारा है। उसने हमको मारा है।

बहती अविरल धारा है ... फिर भी कबीर बेचारा है .... ।''

कबीर आजकल बेहद उदास है :

'ब्राह्मण समाज' ने उनकी रचनाओं का सख्त नोटिस लिया है। कबीर को उनकी तरफ से कई धमकी पत्र भी मिले हैं। उन्होंने प्रसिद्ध वकील द्वारा कबीर को नोटिस भी भिजवाया है कि वह अपनी लिखित वापिस ले या उसे स्वयं ही रद्द करे अन्यथा ... ।

कबीर काफ़ी उदास है आजकल।

पता नहीं किस मनहूस घडी में लिख मारा :

नारी की झांई परत अंधा होत भुजंग,
कबिरा तिन को क्या गति जो नित नारी के संग।''

पढ़ते सुनते ही 'वुमेन ऐसोसिएशन ऑव डेमोक्रेटिक राइट्स' नाम की संस्था की स्त्री सदस्यों में खलबली मच गयी। उनका गुस्सा बहुत प्रचंड हो उठा है। कबीर को उनकी ओर से बहुत ही तीखे स्वर और उलाहना भरा पत्र प्राप्त हुआ। 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' जैसी उदत्त भावनाओं वाली स्त्रियों के प्रति ऐसी हीन भावना वाले शब्दों का प्रयोग छि ... छि ...! स्त्रियों ने लिखा है कि आप तो कबीर सारा दिन 'लोई' में चिपटा रहता है और लोगों को स्त्री जाति से दूर रहने की नसीहत कर रहा है। 'औरों को नसीहत आप मियां फज़ीहत'। उनका एक-एक शब्द सीसे की तरह भारी पड़ रहा है। स्त्री अब मर्द के पैर की जूती न रहकर उसके सिर का शृंगार हो गयी है। स्त्री अब आजाद हो गयी है। ऐसे टुच्चे दोहे लिखकर कबीर ने समस्त स्त्री-जाति का अपमान किया है। उन्होंने अल्टीमेटम दिया है कि यदि कबीर ने दो दिन के अन्दर क्षमा याचना नहीं की तो स्त्रियों का एक 'शिष्टमंडल' उनका 'सयापा' करेगा। उनका पुतला बड़े चौक में जलाया जायेगा। कबीर को उस पत्र द्वारा सख्त चेतावनी दी गयी कि यदि उसने आगे से भी ऐसी कोई शरारतपूर्ण रचना रची तो स्त्री-समाज उसके खिलाफ कोई सख्त ऐक्शन प्रपोज करेगा।

पत्र पढ़ते ही कबीर की सुध-बुध खोने लगी है। कबीर उदासी में घिर गया है। कबीर ने फिर लिख दिया :

''माया तजूं तजी नाहीं जाय
फिर-फिर माया मोहे लिपटाय।''

पढ़ते ही 'लोई' के हाथ पांव फूल गये। सन्न रह गयी बेचारी लोई। अब घर परिवार में दिन रात कलेश रहता है। लोई तो बारम्बार यही कहती जा रही है : ''वैसे तो भगत बना

फिरता है और माया को तज नहीं सकता, तभी तो मेरे साथ कभी सीधे मुंह बात नहीं करता न। मुंह फुलाये पड़ा रहता है सारा-सारा दिन। चंगा भला था अब यह मेरी सौतन माया को पता नहीं कहां से ले आया। कहता है माया तजी नहीं जाये हूं—माया मोहि लिपटाये। माया बगलगीर हो तो बेचारी जलाही लोई को क्या विसात। कबीर ने लाख समझाया कि यह क्या माया नहीं यह तो अन्य ...।" अच्छा जी, और भी कई मायाएँ हैं? फिर तो जी तू गोपियों में कान्ह। हो गया ....फिर तो सठिया गया है तू बुढ़ापे में ...।" लोई मुड़कते हुये लाख-लाख आंसू रोते जा रही है।

घर में लोई ने कबीर की नींद हराम कर दी है। आपस में कई बार हाथापायी की नौबत भी आयी है। पड़ोसियों ने कई बार बीच-बचाव करवाया है। कबीर काफी परेशान है। कभी-कभी बड़बड़ाता भी है। कबीर के चेले चांटे भी पीछे नहीं रहे। गुरु के जीते जी गद्दी के लिए मुकदमे चल रहे हैं। केस होईकोर्ट में चल रहा है, शायद सुप्रीमकोर्ट तक भी जाये। हर चेले के पास है गुरूगद्दी के कागज़ात, कबर के हस्ताक्षरों समेत। हर कोई अपना अधिकार लेने के लिए अधीर है। कबीर को हर पक्ष की ओर से गवाह के तौर पर भुगतने के यत्न जारी हैं। चेले राइफलें कंधों पर उठाये घूम रहे हैं, एक दूसरे के खून के प्यासे। गुरुगद्दी और गोलक की माया खातिर उनके सिर घिर गये हैं।

कबीर देख-देख दुःखी होता जा रहा है। बहुत ही दुःखी होकर कबीर ने लिखा :

"आंखड़िया झाईं पड़ीं पंथ निहारि-निहारि,
जीभड़ी छाल्या पड़ीं राम पुकारि-पुकारि।"

सुनते ही दो स्वामीभक्त शिष्य टॉप के सर्जन लिवा लाये। कहने लगे कबीर जी की नज़र घटती जा रही है, आंखों के आगे धब्बे दिखाई देने लगे हैं। आंखों के डॉक्टर ने आठ नम्बर की ऐनक सजेस्ट की है। एक अन्य डॉक्टर ने बिटामिन बी कम्पलेक्स की कमी बतायी इसीलिए जिह्वा पर छाले पड़े रहते हैं। उनका कहना है कि सौ गोलियों का कोर्स पूरा करने पर छाले हट जायेंगे। गाजर, मूली, पालक और अंडा खाना ठीक रहेगा। कबीर सिर पीट कर रह गया है।

"मेरी बीमारी ये कैसे दूर करेंगे ... रोग ही असाध्य है ... मूर्ख लोग ...!" अब कबीर रो रहा है। रोते रोते लिख रहा है :

सुखिया सब संसार है सब खावै और सोवै,
दुखिया दास कबीर है जागे और रोवै।"

सुनते ही कुछ अंतरंग शिष्यों ने सीख देनी शुरू कर दी है : "गुरू जी, यह सब कर्मों की

गति है। कर्म की गति न्यारी रे साधौ, कर्मन की गति न्यारी। पिछले अच्छे कर्मों वालों को सुख मिल रहा है। पिछले जन्म में अच्छे पुण्य कर्म किये होंगे उन्होंने। आप पिछले किये पापों की सजा भुगत रहे हैं। रही बात जागने की। कामपोज़ की दो गोलियां रात को सोने के वक्त ले लिया करो। नर्वस सिस्टम वीक हो गया है, दवा से ठीक हो जायेगा! चैन से नींद आ जायेगी।"

कबीर बार-बार लिखता जा रहा है :

"तू ब्राह्मण मैं कासी का जुलाहा।"

चेले समझाते हैं कि बार-बार जुलाहा लिखने की क्या तुक है। उन्हें इनफीरीआर्टी कम्पलेक्स तंग कर रहा है शायद। इसे अब के आधुनिक युग में त्याग देना चाहिए। जो प्रभु ने बना दिया ठीक है, संतोष ही अच्छा है अब। इससे हीनता आती है, जातिवाद का प्रचार भी होता है।

कबीर रो रहा है ... उदास है ... बेचैन है ... लिखता है :

'बरसै कंबल भीजै पानी
नाओ बीच नदिया डूबी जाय
धरती बरसै अंबर भीजै
पानी में अगनी जलै'

आम पब्लिक की राय है कि ऐसी उल्टबांसियां बोलने, बेसिर पैर की बातें करने वाले कबीर का दिमाग हिल गया है। उसका सर चलता हो गया है। पगला गया है कबीर बेचारा। क्या अब उसके छोटे-छोटे बाल बच्चों का। उसको मेंटल अस्पताल भेजने की तैयारियां भी हो रही हैं, मेंटल केस हो गया है बेचारा कबीर। बीच-बीच उसके परिवार के लिए चंदा जुटाने की बात भी हो रही है।

कबीर बेचैनी में बड़बड़ाता है :

"चलती को गाड़ी कहें, कहें दूध को खोया,
रंगी को नारंगी कहें, देख कबीरा रोया।"

कबीर व्यंग्य लेखक है।

उसे पढ़ना, उसके साथ चलना और उसे समझना आसान नहीं होता। □

दिवास्वप्न

मुल्लपूडि वेंकटरमण

मुल्लपूडि वेंकटरमण मद्रास (चेन्नई) के सिनीफील्ड में संवाद लेखक हैं। किसी भी विषय वस्तु को लेकर, हास्य और व्यंग्य प्रस्तुत करने में चतुर हैं। 'बुड्गु' तेलुगु बाल उपन्यास इनकी वह कृति है, जिसे छोटे बड़े सभी ने पसन्द किया है। "राजनीति भेताल पञ्चविंशति" "गिरीशम के भाषण" आदि इनके व्यंग्य संकलन हैं।

जो लोग यह कहते हैं कि उन्हें स्वप्न देखने की आदत नहीं है, यह कहां तक सच है? यदि नहीं भी है, तो आदत बना लें। यह स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी है।

क्योंकि मानव को दिए गए ईश्वरीय उत्तम वरदानों में दिवास्वप्न एक है। मन में एकत्रित दुराशा व निराशाओं को अधूरे आशाओं में परिवर्तित करने की यह परमौषधि है। इसका सीमित रूप में सेवन, तन और मन दोनों को भी पुष्टि प्रदान करने वाला है। इसमें सौन्दर्य है आनन्द है और उत्तेजना भी। अति गहरे दिवास्वप्न 'मृग तृष्णा' की भांति होते हुए भी, उतने गर्म नहीं होते। उतने निस्पृह प्रदान नहीं होते और उतने कडुवे भी नहीं होते। किन्तु कड़वाहट कुछ है, यह तथ्य है। गुलाब को सूंघते समय, कांटा धीरे से चुभता है। ठीक उसी तरह, हर दिवास्वप्न का एक जागृऽत गीत है अलारम टैमपीस की तरह निश्चित है। स्वप्न और दिवास्वप्न में एक अन्तर है। स्वप्न अनायास ही देखा जाता है और आधे पल में युग समान एक बड़े स्वप्न के प्रयास से देखा जाता है। जितनी देर तक स्वप्न देखते हैं उतनी देर तक दिमाग को काम करते रहना पड़ता है। इसके लिए आवश्यक है इच्छा और फुरसत।

इच्छा है, तो बिना फुरसत के भी कई लोग स्वप्न देखते हैं। स्वप्न के लिए इच्छा

बड़ी बलवति चीज है। सड़क पर चलते हुए, बस के भीड़-भाड़ में खड़े रहकर, ऑफिस में फटकार सुनते हुए भी दिवा स्वप्न सहज देखे जा सकते हैं।

धनी-निर्धन, शक्तिशाली-शक्तिहीन, बुद्धिमान-बुद्धिहीन, समर्थ-असमर्थ आदि के बिना भेदभाव के सभी को उचित प्रवेश कराने वाला स्वर्ग, दिवास्वप्न है। विशेषकर दूसरी श्रेणी के लोगों के लिए यह दिव्यौषधि है।

सभी स्वप्नों के अंत में, सच्चाई ॲलपीन की तरह, नाजूकी से चुभकर जागृत करती है। हलकी सी दीर्घ सांस लेते हुए, वह स्वप्न जगत है, यह वास्तविक जगत है कहकर कथा समाप्त होती है। दुखान्त है जानकर भी हर एक व्यक्ति बड़ी इच्छा से दिवास्वप्न ही देखता है। सम्भवतः अश्रुओं के साथ आनन्दाश्रुओं के मिलन में ही वह माधुर्य हो।

दिवास्वप्न हल्के टाइप के भी हैं। वे बिना स्वप्न के स्वप्न हैं। ये टेक्निकलर की तरह संवारे हुए नहीं होते। ये यूं ही टूटते नहीं। वे जीवन भर खिलवाड़ करके मुसीबतों में डालने वाले होते हैं।

वेतन के रुपयों से ऋण विमुक्त होकर बिना ऋण के गृहस्थी चलाना ... दरअसल वह नहीं है। वेतन में अबसे हर माह दस रुपये बचाने की योजना करना, हदसे ज्यादा बढ़े हुए बालों को देखकर, नाई नफरत से, डालियां काटने की कैंची से लपकने से पहले ही, थोड़े से बढ़ते ही, तुरंत बालकतरवाने जाना। इस बार छुट्टी मिले तो, बिल्कुल आराम लेने की दुराशा रखना आदि।

मेरे जाने पहचाने एक महाशय हैं श्री कुटुम्बराव जी। वे सुप्रसिद्ध कथाकार नहीं हैं। दरअसल वे स्वप्न नहीं देखते। देखे भी तो स्वास्थ्य सम्मत देखकर तुरन्त उन्हें साध्य बना लेते हैं। मेरा संकेत बड़े परिवार वाले राव जी की ओर है। कल छुट्टी के दिन कुछ भी हो, पूरा रेस्ट लेकर रहूंगा, कहते हैं।

मैंने पूछा—"छुट्टी के दिन आपके उद्देश्य में रेस्ट कैसा होना चाहिए? "बताऊं" वे उत्साह से कहते हैं। उनके कहने में ही सुखबोध का अहसास होता है।

उस पावन दिवस में वे नित्य की भांति छः बजे नहीं उठते। साढे आठ बजे सुस्ताते हुए आंखे खोलते हैं। आंखें खोलकर भी एक-आधे घण्टे तक आंखे मूंदते हुए-खोलते हुए, सोचते-सुस्ताते लेटे रहते हैं। नौ बजे मैनेजर साहब के ज्येष्ठ पुत्र की तरह बेडकाफी पीते हैं। फिर दतौते करके टिफिन करते हैं। थैली लेकर मण्डी जाते हैं। रास्ते में इनसे उनसे गपशप करके तरकारी लेकर घर लौटते हैं। साढ़े दस बजे से रसोई में बैठकर पत्नी से इधर उधर की बातें करते हुए स्वयं तरकारी काटते हैं। हो सके तो स्वयं पकाते भी हैं। इस बीच समाचारपत्र लेकर अद्योपान्त पढ़ लेते हैं। बारह बजे भोजन करके, मस्ती में बिछौना डालते—बापरे ... ऐसे स्वप्न और कई हैं। शाम के समय टिफिन, क्लब या मन्दिर, फिल्म इत्यादि।

पिछले रविवार को ऐसा ही करने का संकल्प उन्होंने शनिवार की सायं किया था। दिवा स्वप्नों में मैं अनुभवी जो ठहरा, देखना चाहा कि इनका संकल्प कहां तक साकार होगा। प्रातः छः बजे ही जाकर उनके आंगन में बैठ गया।

उस दिन साढे छः बजे ही उनकी आंख खुली। उठकर बरामदे में आये और दांतों तले उंगली दबा ली। साढे आठ बजे तक उठना नहीं चाहते थे। किन्तु कम्बख्त अलारम टैम पीस की तरह आदत जो हो गई। घर के पिछवाड़े में नौकरानी, सामने प्रांगण में दूध वाला, बरामदे में बच्चे, चुनावी भाषण की तरह ऊंची-ऊंची आवाज में बोल रहे थे।

"मां को कॉफी लाने को कह दे।"

लड़के ने पूछा—"क्या पिताजी! मुंह नहीं धोयेंगे?

उन्होंने चिल्लाया—"मैंने काफी लाने को कहा न?

पत्नी आई और कहा—"यह क्या उल्टी बात है। बासी मुंह कॉफी पियोगे? उठिये ... उठिये!"

घर के पिछवाड़े में नौकरानी बोल उठी—"मां जी! बर्तन डालोगे, या दूसरे घर जाकर आऊं?"

गृहिणी ने कहा, "उठिये भी! वह चली गयी तो, मुझे ही सारे बरतन मांजने पड़ेगे।"

कुटुम्बराव जी घर के पिछवाड़े की ओर दौड़े।

आधे घण्टे के बाद तरकारी लेने बाजार पहुंचे। बहुत सी तरकारी लेकर, उन्हें फुरसत से रसोई में काटने के यत्न से बाजार पहुंचे। राव साहब की, बैगन रुपया, आलू दो रुपये इस तरह दामों का धमाका देखते ही सारी चुस्ती जाती रही। दो रुपयों की तरकारी खरीदे बिना आधे घण्टे तक, तरकारी काटने की उनकी इच्छा पूरी होती दिखाई न दी। "क्या बात है? दाम इस तरह बढते जा रहे हैं।" आग बबूला होते हुए थोड़ी ही तरकारी लेकर घर लौट गये। इन सबका घमण्ड, ऐसे तोड़ा नहीं जाता ... दरअसल ... धीरे से वे दिवास्वप्न के स्वर्ग में जा पहुंचे। वहां वे प्रधान मंत्री हैं। दाम बढ़ायेंगे तो चीर कर रख दूंगा। नियम बनाकर, जनता की रक्षा का दृढ़ संकल्प लिए, उसी चुनावी प्लेटफार्म पर निर्वाचित होकर लोकसभा के सदस्य बने, फिर मंत्री।

कुटुम्बराव जी के दिवास्वप्नों के नाज़ व नखरे आप क्या जानो? उनका चेहरा देखते ही, आपको पता लग जाएगा कि उनका स्वप्न कब शुरू हुआ? देखते ही देखते उनकी आंखों में खामोशी छा जायेगी। क्रोध में जब वे स्वप्न देखने लगेंगे, तब उनकी नाक फूल जाएगी, ठुड्डी नुकीली बन जाएगी। मुट्ठी अपने आप बन्द होगी। एक दस सेकेण्डस के बाद चेहरा शान्त हो जायेगा। बन्द मुट्ठियों के नसें फिर से ढीली होने लगेंगी। फिर मुख पर प्रसन्नता चांदनी की तरह छा जायेगी। रह रहकर मुस्कुराहट प्रकट होगी। ... अर्थात् क्रोध से मंत्री बने कुटुम्बराव जी, मंत्री बनते ही, जलते दामों की बात भूलकर मानो कि

बरामदे के बराबर विशाल मोटर कार के पिछले सीट में बैठकर जा रहे हों। गणेश जी के लड्डू के बराबर बादाम हलवा खुद खाकर फिर बच्चों के लिए पुवे बनवाकर भेज रहे हों। अपने गले के हारों से फूलों को तोड़-तोड़कर, अपनी पत्नी पर फूलों की वर्षा कर रहे हों। ये सब उनके चेहरे पर देखे गये हाव भाव से बड़ी आसानी से पढ़ा जा सकता है।

जलते दामों को ठण्डा करने के प्रयास में दिवा स्वप्न में चल रहे कुटुम्बराव जी के पैर में, ओंधे सड़क पर का एक कंकड़ चुभ गया। तुरन्त मंत्री पद का त्याग करके—"हाय मर गया" कहकर चिल्ला उठे। दामों से बढ़कर उनका शरीर जल उठा। तत्काल पैर में बिना दवा लगाये ही, पी. डब्ल्यू. विभाग में मंत्री बने, सड़क विभाग को सुधारने लगे। उनके चेहरे पर की कठोरता, दांतों का पीसना देखने से पता चला कि वे सेक्रेटरियों तथा रोड कंट्रेक्टरों से सड़कों पर पड़े कंकड पत्थर चुनवा रहे हों, सड़क को समतल बनवा रहे हों।

दो गम्भीर दिवास्वप्नों के पश्चात् घर लौटते ही वे निश्चेष्ट हो गये। "तरकारी तुम्हीं बनाओ" पत्नी को आदेश देकर, पानी पीकर चबूतरे पर बैठ गये। तभी आये 'रविवार' समाचार पत्र को खोला।

"जरा कहानी-निबन्ध के खंड को इधर दीजिए" कहते हुए एक हाथ उनकी ओर बढ़ा। अखबार लेकर अपने काम के पृष्ठ को लेकर शेष को उनके सामने डाल दिया। कुटुम्बराव जी क्रोध से तिलमिला उठे। आधे घण्टे तक उनकी नजर तो अखबार पर थी किन्तु मन बगल में बैठे महाशय की जबर्दस्ती पर था। मैंने पूछा—"क्या! आराम कर रहे हैं?" उत्तर मिला "खाक" ... मुझे लगा कि शायद वे कलचरल मिनिस्टर बनकर जनता को समाचार पत्र खरीदकर पढ़ने, बाजू वाले के हाथ से समाचार पत्र न छीनने की आदत, संयम की भावना का उद्बोध कर रहे हों। इस झंझट में पड़कर, टिफिन करना भी भूल गये। फलस्वरूप क्रोध के साथ-साथ भूख की ताप भी बढ़ गई। छुट्टी का दिन होने से, पत्नी फुरसत से पूजा में मग्न थी। भक्ति गीत गा रही थी। राव जी का ध्यान उधर गया। वे झल्लाते हुए उठे और कहा—कम से कम इतवार के दिन भी निश्चिन्त से खाकर आराम करने का भाग्य में नहीं है। पत्नी ने पानी का घड़ा नीचे उतारा। झांककर हंसने वाले बच्चों को दो तमाचे लगाकर, वहां से भेज दिया फिर पत्नी को मनाने लगे। उन्होंने कहा "अब मैंने क्या बुरा कहा?

"इस बार छुट्टी के दिन पूरा रेस्ट लेना है" कहते हुए वे मेरे सामने से उठे। पंद्रह सालों से उनका यह स्वप्न चलते आ रहा है। आज तक साकार नहीं हुआ। मुझे एक ही बात सूझी, "इस बार छुट्टी के दिन दस मिनट निकाल कर, एक छुट्टी के दिन पूरा आराम किये जैसा टेक्निकलर दिवास्वप्न देखना उचित होगा। □

अनुवादक : डॉ. सोमनाथ राव

हमारी बॉटनी की मिस

पी.एन. विजयन

मानव मन भी अनेक विसंगतियों से भरा है। अब इन बॉटनी की मिस को ही लीजिए, अपने सौंदर्य और प्रतिभा के आगे ये सबको बौना समझती हैं, परन्तु स्वयं क्या हैं। मलयालम के प्रख्यात कथाकार पी.एन. विजयन की कथा।

हमारी बॉटनी मिस आज अव्वल फार्म पर थीं। एक ऐसी टू पीस ड्रेस में आयी हैं जिस पर कई प्लीट एवं फ्रिल लगायी हैं।

हम लोग असेम्बली के खत्म हो जाने के इंतजार में थीं। चीज कितनी भी बढ़िया क्यों न हो, पास से देखने से ही इसका पूरा ग्लैमर दिखायी देता है। पहला पीरियड मिस का है। हम चारों पहली बेंच पर ही बैठी थीं। इसलिए हम नगीश और रोकीना की तरह स्टाफ-रूम घूमने नहीं गयीं। बरामदे से झांक देखने भी।

मिस क्लास में अचानक चली आयी थीं। मानों गहरे रंगों की जमघट हो। उससे विदेशी परफ्यूम की भीगी सुगंध क्लास में फैल गयी।

पर हमें सबसे ज्यादा मिस के कपड़ों ने ही आकृष्ट किया था। उसके टॉप पीस के कुंकुम रंग का क्या कहना!

—टेक योर सीट चिल्ड्रन।

मिस की आवाज में मानों चांदी की पाजेब बज रही थी। जब वह चिल्ड्रन कहतीं तो हल्की-सी खनक उठती।

गुड मोरनिंग चिल्ड्रंस।

जब मिस फिर से झनझना उठीं तो हमें ध्यान आया कि कुछ न कुछ सोचने के बीच एक बात हम भूल ही गयीं। मिस को विश नहीं किया। खैर उसकी थकान दूर करने के लिए हमने एक 'स्पेशल गुड़ मोरनिंग टीचर' ज्यादा संगीतात्मक ढंग से गया।

—"वेल चिल्ड्रन। एक खुशखबरी ..." लगा कि मिस कोई छोटा-सा सस्पेंस बताने जा रही हैं।

—प्लीज कहिए मिस।

—टेल अस सून मिस। रशीदा को जरा भी धीरज न था।

—वाइ डॉन्ट यु गेस।

—आज मिस का बर्थडे है।

—हाऊ स्वीट ऑफ यू।

हममें से कुछ ने पहले ही अनुमान लगाया था वरना मिस ऐसे प्रदर्शन के लिए तैयार न होतीं। बताने का क्रेडिट तुषार ने ही लिया था।

तुरंत हमारी उमंग गुब्बारे जैसे हो गयी। हम जन्म-दिन मुबारक का वृन्दगान बन बहने लगीं।

—ओ ... थैंक यू सो मच।

देर तक वे मुस्कुराती खड़ी रहीं, ऊपर से नीचे, तक फूले गुलमोहर पेड़ की तरह।

—मिस यूं ही थैंक्स कहने से काम नहीं चलेगा।

—ट्रीट चाहिए मिस।

—मिस, आप क्लास नहीं लेंगी।

हमें थोड़ा-सा संदेह हुआ कि क्लास के अन्दर का अनुशासन थोड़ा-सा पथरा रहा है। मनीषा और रशीना वैसी हैं। कोई अवसर मिले तो छोड़ती नहीं।

मिस अपने थैले से स्वीट बॉक्स निकाल रही थीं, 'कोकोनट कुकीज' या 'मैंगो बाइट' नहीं था। हमारे लिए अपरिचित नयी वेराइटी है। हर एक छोटा-सा प्रश्न चिह्न बनती जा रही थी।

मिस ने ही मिठाइयों का वितरण शुरु किया। वे हमारे बीच से ऐसे जा रही थीं मानों कोई म्यूजिकल फाऊन्टन उठता गिरता चला जा रहा हो।

—मिस ने कमाल कर दिया।

—लुकिंग क्यूट मिस।

मर्विलस।

—बिल्कुल जूही जैसी ही।

हमारे आश्चर्य एवं प्रशंसा को स्वीकार करके मिस यूं चल रही थीं। मानों हमें छूने और राय देने को प्रोत्साहित कर रही हों।

ध्यान से देखने पर ही एक दूसरा चमत्कार देख पायी थीं। मिस के ड्रेस पर कई

डिजाइनों के छिद्र थे। उसमें से बिखरते गहरे रंग हमें मंत्रमुग्ध कर रहे थे। हमारा सबसे नया आश्चर्य यही था कि क्या ये उनके शरीर के हैं कि अंदर के कपड़े के हैं।

खैर, दस-पंद्रह मिनट मजे में कटे। बाकी समय भी यों मनाने मिल जाएगा, यही हम आशा कर रही थीं। तभी पीछे की बेंच से एक जुम्हाई। पीछे मुड़कर देखा तो पहला टैंकवासी अन्नपूर्णा। वह वैसी ही है। ऐसा कोई अवसर उसे रास नहीं आता जो सबको अच्छा लगे। जब सब ठहाका मारकर हंसीं तो उसे नींद आयी। बिना किसी सोशल सेंस की लड़की। उसने सुष्मिता सेन का नाम तक नहीं सुना। कोई लोकप्रिय टी.वी. सीरियल भी उसने नहीं देखा। अगर हम कहें कि आज हम 'वंडर विंग्स' पर उड़ रही हैं तो वह आश्चर्य चकित खड़ी रह जाती।

लगता कि अन्नपूर्णा की जुम्हाई ने मिस को मूड़-आऊट कर दिया हो। वे हम से कुछ कहने जा रही थीं। क्रास्त की कजिन या बंबई के भाई के बारे में। या बर्थ-डे को मिले ग्रीटिंग कार्डों के बारे में। सब नष्ट हो गया।

मिस धीरे से मेज़ के आसपास चली आ रही थीं। हाजिरी-रजिस्टर लेके सुस्ती से पृष्ठ उठा रही थीं। हमारे बीच के गैर-हाजिर लोगों को पहचानकर उनके नाम याद कर रही थीं। हमें बड़ा दुःख हुआ।

—वेल चिल्ड्रन। पिछले हफ्ते मैंने एक असाइनमेन्ट दिया था। किन-किन लोगों ने उसे पूरा किया?

हम रोने को हुए। मिस की आवाज के घुंघरू थम गए थे। चेहरे की चमक फीकी पड़ी थी। अन्नपूर्णा को कोसते हुए मैंने बैग खोला। इस डर से कि पकड़ी जाऊंगी, मैंने हरबेरियम शीट बाहर निकाला। पहली बेंच पर सिर्फ मुझ पर ही मिस को भरोसा था। हालांकि उसमें मेरी भूमिका छोटी थी।

सफेट शीट पर सेलोटेप के नीचे मेरी दीदी की 'सुन्दरी' सोयी पड़ी थी, जिसे देखकर मिस का उत्साह जाग उठा। मुर्झायी पंखुडियों और सूखी कलियों को छू कर भिसने हामी भर दी। 'नोट बॅड।' शायद वह कह रही थीं।

—इट नीडस् लिटिल मोर ट्राइंग। प्लीज राइट द बॉटानिकल नयिम इन् कैपीटल लटर्स।

जब मुझे मालूम हुआ कि दूसरी कोई गलती नहीं ढूंढ निकाली, तो मैंने भगवान को याद किया।

दूसरी बैंच की ट्रेलीशा और उसकी दोस्त उठ खड़ी थीं। उनमें सिर्फ अलीशा ने काम किया था। उसके हाथ दो शीट दिख पड़े। तुम्बा* और तुलसी को ही उसने सुखा के चिपकाया था। वह भी किसी और के हाथ की करामात होगी। दोनों ठीक से सूखा

* तुम्बा—छोटे सफेद फूलों वाला पौधा।

नहीं। फिर भी मिस रूठीं नहीं।

—ओ.के. आइ विल गिव यू अनदर वीक।

—थैंक यू मिस। बच जाने की समवेन प्रार्थना थी। उससे क्लास को बीच में खोयी हुई असफलता वापस मिलेगी—यही हमारी आशा थी। पर मिस को बॉटनी की किताब उलटते-पुलटते देखा। अब वह शेल्फ खोल रही हैं। हमें यकीन हो गया कि वह क्लास लेने जा रही हैं। क्या किया जाए। सहना ही होगा।

—लुक हीयर, चिल्ड्रन। हम आज एक नए पौधे के बारे में पढ़ेंगे।

मानों कोई कम्प्यूटर बोल रहा हो। किसी को किसी पौधे की जरूरत नहीं थी। जिसे थी, उसने गांधी के घने अंधेरे को पैदा कर रखा था। सबके लिए जिम्मेवार अन्नपूर्णा ही है। कितने अच्छे किसी दिन को उसने बरबाद किया। इसी बीच मिस ने एक रूखे चार्ट को खोल बोर्ड पर लगाया था। किसी मनहूस पौधे का चार्ट था ऊपर जो लिखा था, वह उसका नाम होगा। मैं पढ़ नहीं पायी। पास बैठी मीना भी पढ़ नहीं सकी। शायद यह चेतावनी थी, हमारे स्पेक्टस् बदलने की। तीन साल हो गये। आज शाम ही पापा से कहकर तैयार कराऊंगी। बी. डिविजन की तुषारा का फ्रेम अच्छा है। उससे बढ़िया कोई सेलेक्ट करना है। मनीषा को भी बुलाऊंगी।

—लुक हियर।

हम समझ गये कि मिस किसी लंबे स्पष्टीकरण के लिए तैयार हो रही है। मिस की 'गाइड' का कवर बदला है। अब किसी फैशन-परेड के दृश्य हमारे सामने हैं। नीचे की पंक्तियां हम पढ़ नहीं पातीं। आंखें आज ही टेस्ट करूंगी।

—आज हम किसी अपूर्व घास-वर्ग के पौधे के बारे में पढ़ने जा रहे हैं। पुराने जमाने में हमारे पूर्वज इसी का धान खाते थे। आज भी विशेष अवसरों पर जैसे भोगम् इसे कुछ लोग खाते हैं।

—मैं बताऊं मिस?

किसी ने पीछे से कहा, तभी हमारा ध्यान हटा। अन्नपूर्णा होगी। जब हम सोने की तैयारी करें, तभी वह ज्यादा चुस्त हो जाती। सिर्फ सुनते रहना नहीं, बीच-बीच में बहाव पे रोड़ा डालना चाहिए। हम भी कुछ न कुछ पूछना तो जानती हैं। इसलिए हम मौन धारण करती हैं कि यह एक बैड प्रक्टीस है। शायद मिस को इरिटेट करे। वह एकदम गंवार है। कोई मैनर्स नहीं।

—यू वेस्ट अन्नपूर्णा। डॉन्ट जम्प इन्टु हेस्टी कन्कयूजन्स। वेल, मैं घास के वर्ग के एक पौधे के बारे में बता रही थी। उसका नाम, फेमिली आदि पर पहुंचने के पहले उस पर कुछ सामान्य बातें बताऊंगी।

हम चारों खामोश सुने जा रही थीं। यह सब हमारे लिए उपयोगी सामान्य ज्ञान तो

नहीं होगा। चाहे तो अन्नपूर्णा या अम्बुजासी इसे रट लें।

—हमारे ग्रामीण इलाकों में बरसात के मौसम में मिट्टी खोद के बनायी जाने वाली क्यारियों में, आइ मीन हमारे टेनीसकोर्ट जैसे दीर्घ-चतुर खेतों में ये पौधे पैदा होते हैं। ऐसी गन्दगी के बीच जिसका हम स्मरण भी नहीं कर सकते। इसके लिए वे प्राकृत मनुष्य पसीना बहाते हैं, जो कि काले और नाटे होते हैं। जिनके पास हाथ के दस्ताने या चप्पल नहीं होती थी। यू नो ये इन्सान शैम्पू तक नहीं लगाते थे। एक जमाने में मानव और जानवर मिलकर इन खेतों की तैयारी करते थे। इट वास एक प्रीमिटीव प्रोसेस डयूरिंग विच् दिस डर्टी एनिमल्स यूसड टु मिस एण्ट रिट इन द सेम ...।

—इनफ मिस। आज के लिए काफी हो गया।

—जी हां मिस। आइ टू हैव रा वोमिटिंग सेंसेशन।

हमें नहीं मालूम अलीशा और रशीदा को यह साहस कहां से हो गया। कुछ नहीं तो हमारी बांटनी की मिस है। अलावा इसके आज उनका बर्थ डे है। स्वीट जो मिला, उसे भी भुला दिया। कुछ और इंतजार किया जा सकता था।

—ऑल राइट। आइ टू फील इट क्वाइट अनप्लमैंट टु एक्सप्लेव। ठीक। बाकी प्योरे तुम लोग इकट्ठा करो। सबके घर बुजुर्ग लोग होंगे। अटलीस्ट वन ऑल्ट मैन। ओर ऑल्ट वुमन। पूछताछ करना। अगर इस पौधे का स्टेप, स्टॉक या सीड्स हो तो लेते आना।

—मिस मैं ले आऊंगी।

फिर से अन्नपूर्णा का इन्टरपशन।

—तू क्या ले आएगी?

मिस बड़ी दया से अन्नपूर्णा के पास जा रही थी। जब उनके सारे द्रोहों को भुलाकर मिस मुस्कुराने लगीं तो हमें क्रोध आ गया।

—मिस अभी आप धान के पौधे की बात कर रही थी न? हमारे घर अभी एक दफा चावल खाते हैं। दादाजी दूर गांवों में धान की खेती करते हैं। हर महीने बाबूजी वहां जाते तो चालव ले आते हैं। अगली बार वे गये तो मैं कह दूंगी।

तभी घंटी बजी। अन्नपूर्णा के पुराण से हम बच गयीं। वह और उसके दादाजी। शायद सबकुछ स्लफ होगा। किसी कोमिक्स की बुक से रट लिया होगा। हम लोग तो सारा दिन कोमिक्स को छूती तक नहीं। उससे कितनी अच्छी हैं टोकिंग बुक्स। सोफे पर लेटे आराम से सुन सकती। पढ़ने की बोरियत नहीं। धान का पौधा। बुलशिट!

—ऑल स्टैण्ड।

मिस विदा ले रही है। हमें दया आयी। कितने सुन्दर कपड़ों में आयी हैं। आयी तो कितनी अच्छी लगी थीं। अब मुर्झायी जा रही हैं।

—थैंक यू मिस। गुड मोरनिंग मिस।

हम ने जी जान से अभिवादन किया। अगले क्लास में मिस को ऐसा अनुभव न हो।

—बट अयाम शुअर यू डॉन्ट नो इटज बोटानिकल नेम डु यू?

बाहर जाते हुए मिस मुड़ी। उनकी दृष्टि अन्नपूर्णा पर पड़ी। हम सांस रोके बैठी थीं।

—नो मिस।

एक क्षण की मुश्किल के बाद ही अन्नपूर्णा मान गयी थी। हम आश्वस्त हो गयीं।

—देन टेक इट फ्रम मी। इट ईज रैसा सटीवा।

हम लोगों में से कुछ ने अनजाने ही ताली बजायी। मिस जान गयीं। अन्नपूर्णा हार गयी। संतोष की मिठास बिखेरती मिस जा रही थीं तो हमें ठहाका मार हंसने की इच्छा हुई।

जब निश्चय हुआ कि मिस चली गयीं तो हम उनके पीछे की ओर कूछ लगाके अन्नपूर्णा को घेरने लगीं।

—सो सैड मिस एनसाइक्लोपीडिया।

—तू तो उसका बोटानिकल नाम भी कंठस्थ कर सकती थी।

मुझे अन्नपूर्णा से सहानुभूति आयी। मैं अनीषा और अलीवा के पीछे ही रही।

—यह नहीं कि मुझे मालूम नहीं था। वह तो मिस के लिए मेरा जन्मदिन पुरस्कार ही समझो।

हम लोगों में से किसी ने उस पर विश्वास नहीं किया। फिर भी किसी अनजान हालत में हम पीछा छुड़ाए जा रही थीं। □

अनुवाद : वी.डी. कृष्णन नंपियार

रंग में भंग

गोविन्द मलही

जीवन के अनेक रंगों में गहरा रंग है विवाह। विवाह के सुख को व्यक्ति जीवन पर्यंत भोगना चाहता है। शादी के दस वर्ष बाद भी पति-पत्नी अपने सुनहरे अतीत को-जब वो नए दूल्हा दूल्हन बने थे, भोगना चाहते हैं। परन्तु ये जालिम जमाना उन्हें शादी की वर्षगांठ भी ठीक ठाक नहीं मनाने देता। क्या करता है जालिम जमाना, इसे पढ़िए सिंधी भाषा के चर्चित हास्य व्यंग्यकार गोविंद मलही की इस रचना में।

वह अपने प्रिय की यादों में ध्यान-मग्न थी कि बाहर के दरवाजे के लैच में चाबी घुमाने की आवाज हुई। वह खुशी से उछल पड़ी। उसने दोनों हाथों से बालों को सहलाया और अपने पति की राहों में आंखें बिछा दीं।

हरेश ने उल्लसित स्वर से कहा, ''हैलो डार्लिंग!''

उसने कहा, ''आपने बड़ी देर लगा दी।'' लेकिन वह मन ही मन गद्‌गद् हो उठी, उसकी नज़रें हरेश के हाथों में पकड़े गुलदस्ते पर पड़ी।

हरेश ने गुलदस्ता उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, ''मेनी हैप्पी रिटर्न्स आफ द डे।''

उसने प्रफुल्लित होते हुए कहा, ''तो आपको याद है डार्लिंग।''

हरेश ने शरारत भरे लहजे में कहा, ''मुझे इस घर में नहीं रहना क्या।''

वह हैरान होते हुए बोली, ''मैं आपका मतलब नहीं समझी।''

हरेश ने गंभीर होते हुए कहा, ''पिछले वर्ष भूल गया था तो तुमने मेरा जीना दूभर कर दिया था।''

"ज़िंदगी का इतना बड़ा दिन भला कोई भूल सकता है।"

"शुभ से शुभ दिन नहीं कहा।"

"हां शुभ से शुभ दिन। शादी क्या बार-बार की आती है।"

हरेश ने मन ही मन कहा, "कई लोग बार-बार करते हैं लेकिन उसी से नहीं।" परंतु बाहर से वह खामोश रहा।

आज गिले-शिकवे नहीं करेंगे। खुशी से शुभ दिन मनाएंगे।

प्रिय, "पता है आपको आज हमारी शादी को कितने वर्ष पूरे हुए?"

हरेश इस सवाल के लिए पहले से ही सतर्क था। उसने तपाक से कहा, "दसवीं सालगिरह है आज मोहिनी डार्लिंग।"

मोहिनी, डॉर्लिंग शब्द सुनकर फूली नहीं समाई। उसने इठलाते हुए कहा, आज का दिन सिर्फ हम और तुम मिलकर मनाएंगे।

"हमारे दो शहज़ादे कहां जाएंगे और ये नौकर रामू।"

"आप ही तो कहते हैं कि मैं इंतजाम करने में अत्यंत निपुण हूं।" वह गर्व से बोली। "हमारा बड़ा बेटा स्कूल गया है, और छोटे को रामू ननिहाल ले गया है। वहां से वे लोग मार्निंग शो देखने जाएंगे। आप ऑफिस में फोन कर दीजिए कि आज आप नहीं आ रहे हैं।"

"लेकिन ..." वह इस बेतुकी बात को सुनकर असमंजस में पड़ गया। वह ऑफिस में न आने का क्या बहाना बनाएगा। शादी की दसवीं सालगिरह मनाने के लिए छुट्टी लेना तो हंसी का विषय बन जाएगा।

दो बच्चों के पिताश्री! चले हैं शादी की सालगिरह मनाने, और वह भी ऑफिस आवर्स में!!

मोहिनी ने बनावटी रोष दिखाते हुए कहा, "लेकिन-वेकिन को मारो गोली, आप मेरे हठ से तो परिचित हैं।"

हरेश अशांत हो उठा, क्योंकि वह मोहिनी के राजहठ से बखूबी परिचित था। इसके कुछ कड़वे अनुभव भी मानस-पटल पर अंकित हो आए।

मोहिनी ने विश्वास के स्वर में कहा, "आपके मुख-मंडल से प्रतीत होता है कि आप मेरी बात टालेंगे नहीं। हम दस साल पहले की बात दोहराएंगे। सुहागरात मनाएंगे।"

हरेश के मुख से बेइख्तयार निकल पड़ा, "सुहागरात!" फिर संयत होकर कहा, "इस समय!"

मोहिनी खिलखिलाकर हंस पड़ी और बोली, "इस समय क्या। हमारा वास्ता तो दिल की खुशी से है," मैं वही साड़ी पहनूंगी। और आप वही सूट, शुभ-कार्य में विलंब नहीं होना चाहिए। "पहले आप जा रहे हैं स्नान के लिए या मैं जाऊं?"

हरेश ने शिथिलता भरे स्वर में कहा, "स्नान पर तो तुम्हीं जाओ मगर ...

"फिर वही अगर मगर ...

"मेरा सूट-कोट तो छोटा पड़ गया होगा।"

"अब तो वह तुम्हें फिर आ जाएगा। दस साल पहले तो आपकी पैंट चिचक रही थी और कोट को देखकर ऐसा लगता था जैसे वह तुम्हारे बड़े भाई का हो।"

हरेश को अंग्रेजी की कहावत याद आई—"इफ यू कान्ट फाइट, ज्वाइन" शांतिमय वातावरण में भंग न डालना उसने उचित समझा।

मोहिनी ने किलकारी मारते हुए कहा "बड़ा मज़ा आएगा।"

हरेश ने कहा, "तुम सहमती, सिमटती हुई बड़ा सा घूंघट करके बैठना, मैं दबे कदमों से कमरे में प्रवेश करूंगा, तुम और अधिक सिमट जाओगी, और मैं तुम्हारे चांद जैसे सलोने मुखड़े से नकाब हटाऊंगा।

हरेश ने उत्तेजना भरे स्वर में कहा, "चंद्रबदनी मृगलोचनी सच कहूं, आज भी तुम बीस-बाईस की नव-यौवना-सी प्रतीत होती हो।"

"हट नटखट! लेकिन दस साल पहले आपने मेरा घूंघट उठाया कब था? आप तो घूंघट उठाने से पहले ही पानी-पानी हो गए थे, आपके दिल की धड़कन बढ़ गई थी, मुझे आप पर तरस आया और मैंने खुद ही रूख से नकाब हटाया था।"

हरेश ने भावुकता भरे लहजे में कहा, "उस दिन तो कोई जादू हुआ था मुझ पर, वह अतीत में ग़ोते खाते हुए बोला, आज तक 'योर्स फेथफुली' बना हुआ हूं।"

मोहिनी इठलाती हुई बोली, "मैंने भी आपको आंखों की पुतली बनाकर रखा है।" और दूसरी बात भी सुनिए ....

हरेश ने नम्रता की मूरत बनकर कहा, "हुकुम मेरे हुज़ूर, फरमाइए मोहिनी डॉर्लिंग। खिदमत में बंदा हाजिर है।"

मोहिनी ने अभिनवता के साथ कहा, "आज गिले-शिकवे नहीं होंगे, सिर्फ हंसी-मज़ाक होगा।"

हरेश ने कृतार्थ होकर कहा, "ऐसी बात है तो यह सालगिरह हमें हर महीने मनानी चाहिए।"

मोहिनी ने चंचल मुस्कान से कहा, "फिर तो कुछ नयापन ही न रहेगा। अब आप सुगंधित और सुंदर फूलों से जाकर सेज सजाइये। मैं जाकर स्नान करती हूं।"

हरेश ने स्मित मुस्कान के साथ कहा, "नई-नवेली दुल्हन बनकर निकलना।"

उसकी सुराहीदार गर्दन शरमाकर झुक गई और पलकें धीरे-धीरे ऊपर इस प्रकार उठीं जैसे सूर्य उदित होने पर कमल की पंखुड़ियां खुली हों। ठीक उसी समय दरवाजे पर दस्तक हुई। हरेश ने बलखाते हुए कहा, "इस समय कबाब में हड्डी बनकर कौन आया है?" क्लांत कदमों से जाकर दरवाजा खोला। पड़ोसन रमा आंटी द्रूत गति से दनदनाती हुई

अंदर आई और कहा, "आज फोन करने में ज़रा देर हो गई।"

मोहिनी ने खार खाकर अपने स्वर को संयत करते हुए कहा, "रमा आंटी आज फोन खराब है।"

रमा आंटी ने बेधड़क फोन का चोगा हाथ में लेते हुए कहा, "यह तो तुम रोज़ ही कहती हो, परंतु मेरे हाथ में आते ही फोन ठीक हो जाता है।"

हरेश और मोहिनी ने ठंडी आह भरते हुए निराशा की दृष्टि से एक-दूसरे की ओर देखा।

रमा आंटी ने फोन का नंबर घुमाया और डायल पटकते हुए कहा इंगेज है। मेरी देवरानी ने अपनी मां को फोन लगाया होगा, "अब एक घंटे तक मां से बातें करेगी। बातें क्या बक-झक करेगी।"

रिसीवर रखकर झुंझलाते हुए कहा, "एक घंटे के बाद आती हूं।" "निगोड़ी सड़ी-जली से बात करना भी जरूरी है।"

वह मोहिनी और हरेश की प्रतिक्रिया को नजर अंदाज करते हुए तेज़ कदमों से बाहर चली गई।

मोहिनी ने कुढ़ते हुए कहा, "हम तो फोन रखकर फंस गए।"

हरेश ने चुप्पी साधते हुए मन ही मन सोचा चांद को ग्रहण लगना शुरु हो चुका है। वह शीघ्रता से दरवाजा बंद करने के लिये दो कदम बढ़ा ही था कि पड़ोसी कॉलेज में पढ़ता नौजवान छात्र सुंदर ने फुर्ती से अंदर प्रवेश करते हुए कहा, "मुझे टी.वी. देखने की इज़ाज़त दीजिए। आज दिल्ली में भारत और पाकिस्तान के बीच वन-डे इंटरनेशनल चल रहा है। मेरे घर में मेरी भाभी खाना-खजाना का चैनल खोलकर बैठी है।"

हरेश ने उसे रूखे स्वर में कहा, "मैच में अभी देर है, इस बीच खाना-खजाना का समय पूरा हो जाएगा।"

"तब तक कल खेली गई लंका-भारत मैच के हाई-लाइट्स देखूंगा।" उसने शीघ्रता से टी.वी. का स्विच दबाया, टी.वी. नहीं चली।

हरेश ने क्रोध पर संयत रखकर कहा, "टी.वी. खराब है, तुममें कुछ सुनने की सब्र ही नहीं है।"

सुंदर ने निराशा भरे स्वर में कहा, "यह तो बड़ा बुरा हुआ ...

वह हताश हो बेबस कदमों से लौट गया।

मोहिनी ने खुशी से उछलकर पूछा, "टी.वी. सचमुच खराब है?"

हरेश ने गर्व से कहा, "मैं भी नहले पर दहला हूं। अपने बाप की टी.वी. समझकर आया था। इसकी मुझे पहले से ही आशंका थी, कल भी आकर बैठा था, रविवार होने के कारण मैं भी घर पर था। आज मैंने पहले से ही स्विच निकाल दिया था, मेरा अनुमान ठीक निकला, आज भी वह उम्मीद रखकर आया होगा कि चाय का प्याला मिलेगा।"

"माना मैंने आपको।"

इस बीच वह दरवाजे का लैच लगा चुकी थी कि अचानक हवा में एक फायर हुआ। मोहिनी ने निराश होकर कहा, "यह तो मेरे मामाजी हैं, वे प्लास्टिक के कारतूस की बंदूक लेकर घूमते हैं, अब वे दोपहर का खाना खाए बगैर तो जाएंगे नहीं।"

हरेश ने मन ही मन राहत की सांस ली, लेकिन ऊपर से बनावटी दुख दर्शाते हुए कहा, "हम लोगों से गलती हो गई। जिस प्रकार नव-विवाहित जोड़ा होटल में मनाने जाते हैं और उनके कमरे के बाहर बोर्ड लगाया जाता है, उसी प्रकार हमें भी दरवाजे पर तख्ती लगानी चाहिए थी : 'डोंट डिस्टर्ब'। नाऊ ओ.के. नेक्स्ट ईयर।

अब मैं ऑफिस जाने के लिए तैयार होता हूं, न जाने से देर से जाना बेहतर है।

टनटनाकर दरवाजे की घंटी बज उठी।

हरेश ने कहा, "जाकर दरवाजा खोलो वरना तुम्हारे मामू कहीं अपनी बंदूक से हमारा दरवाजा न तोड़ दें।

मोहिनी ने कातर स्वर में निराश होते हुए कहा, "यह कहावत किसने कही है? मैन प्रपोजेज, गॉड डिस्पोज़ेज़।

लेकिन आज तो (मैंने) वूमन प्रपोज़ेज़ किया था ...

हरेश ने मज़ाक के लहज़े में मुस्कुराकर कहा, "कभी-कभी भगवान को भी स्त्री-पुरुष में फ़र्क नज़र नहीं आता।"

वह कमरे की ओर चला गया।

फिर लगातार बजती हुई घंटी की ओर उसका ध्यान आकर्षित हुआ।

मोहिनी ने गहरी सांस लेते हुए कहा, "आती हूं मामू जी।" □

अनुवादक : हेमा बलदेव मतलानी

राजस्थान की उपेक्षित धरोहर

अखिलेश कुमार

राजस्थान सांस्कृतिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण राज्य है। अनेक विदेशी पर्यटक यहां न केवल सुरक्षित इतिहास और पर्यटक स्थलों को देखने आते हैं, अपितु यहां की संस्कृति को भी पहचानने आते हैं। अजमेर राजस्थान का महत्वपूर्ण नगर है, परंतु इसको वह महत्व नहीं दिया गया है जो मिलना चाहिए था। राजस्थान की इस उपेक्षित धरोहर का विस्तृत पक्ष प्रस्तुत लेख में उद्घटित किया गया है।

सातवीं शताब्दी में राजा अजयपाल द्वारा बीठली पहाड़ी पर बनाए गए अजयमेरू दुर्ग के साथ यह शहर पहले 'अजयमेरू' नाम से जाना जाता था। अजमेर भारत में हिन्दू शासन की अन्तिम राजधानी के रूप में भी जाना जाता है। मुगल शासकों और ब्रिटिश साम्राज्य का मुख्य आकर्षण भी अजमेर ही रहा था। अजमेर के 'अढाई दिन का झोपड़ा' के विषय में तो पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के तत्कालीन महानिदेशक जनरल कनिंघम ने लिखा है "भारत में कोई भी ईमारत इतनी ऐतिहासिक, रूचिपूर्ण अथवा पुरातात्विक महत्व की नहीं है।" इतिहासकार फर्ग्यूसन ने लिखा है कि "काहिरा (मिस्र), तेहरान (ईरान), मेड्रिक (स्पेन), दमिश्क (सीरिया) की ऐतिहासिक इमारतों का सौन्दर्य अढाई दिन का झोंपडा के सामने फीका है। बादशाह अकबर, जहांगीर, शाहजहां, औरंगजेब अथवा किंग जेम्स प्रथम के राजदूत सर टॉमस रो सभी अजमेर की खूबसूरती के दीवाने थे। बादशाह अकबर ने 'मेगजीन' नामक इमारत को अपना मुख्यालय बनाया और अजमेर को सूबे का दर्जा देकर जयपुर, बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर, सिरोही को इस सूबे में शामिल किया। वे गुजरात का शासन भी यहीं से करते थे। बादशाह जहांगीर दिसम्बर 1613 ई. से 1616 ई. तक लगातार तीन वर्ष अजमेर में रहे और उन्होंने अजमेर में अनेक खूबसूरत स्थलों का चयन व निर्माण

किया। बादशाह शाहजहां ने भारत में किसी भी ऐतिहासिक ईमारत के लिए संगमरमर व नक्काशी का सर्वप्रथम प्रयोग भी आनासागर झील में पाँच बारादरी में ही हुआ था। इससे पूर्व किसी भी मुगल बादशाह द्वारा यह कार्य अन्यत्र नहीं किया गया था। आगरा का ताजमहल दिल्ली किले का दीवान-ए-खास बाद में निर्मित हुए और इसीलिए भारत में मुगल वास्तुकला शैली का मौलिक सौन्दर्य अजमेर में दिखाई देता है। ब्रिटिश शासक अजमेर में आनागार झील के समीप रात्रि का भोजन लेने में अपना गौरव समझते थे। सर टॉमस रो 3 दिसम्बर 1615 ई. से 1 दिसम्बर 1616 ई. तक अजमेर में लगातार तीन वर्ष रहे और अजमेर में 'मैगजीन' की खिड़की से ही बादशाह जहांगीर द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी को भारत में व्यापार करने की इजाजत दी गई। शाहजहां का बड़ा पुत्र दारा शिकोह अजमेर में जन्मा था। स्वामी दयानन्द सरस्वती का देहान्त अजमेर में 3 अक्टूबर 1883 ई. को दीवाली के दिन भिनाय कोठी में हुआ था। वेदों का भाष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती ने पुष्कर के ब्रह्मा मन्दिर में लिखा। पृथ्वीराज चौहान तृतीय अजमेर व दिल्ली के 1179 ई. से 1192 ई. (पूर्वाद्ध) तक शासक थे और तारागढ़ किले से दूर ही 1192 ई. के (उत्तरार्द्ध) में शहाबुद्दी गोरी ने तराइन के मैदान में उसे हरा सका था। इससे पूर्व सातवीं शताब्दी से 1192 ई. तक अजमेर का तारागढ़ किला अभेद्य और अविजित रहा। महमूद गजनवी का प्रयास भी असफल रहा। शाहजहां के बड़े पुत्र दारा शिकोह ने भी सैन्य दृष्टि से सुरक्षित होने के कारण 1659 ई. में तारागढ़ किले में ही शरण लेना उचित समझा।

अजमेर समुद्र तल से 486 मीटर की ऊंचाई पर व 25 23′ 30″ से लेकर 26 41′ उत्तरी अक्षांश व 73 47′ 30″ और 75 27′ 0″ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। भौगोलिक दृष्टि से अजमेर राजस्थान राज्य के बीच में है। विदेशों के पर्यटन लेखकों ने अजमेर को 'राजस्थान का हृदय व चाबी' कहा है। सरकार के पर्यटन विभागों द्वारा उपेक्षित यह शहर 'गोल्डन त्रिकोण' (दिल्ली, जयपुर, आगरा) के अत्यधिक प्रचारित होने का शिकार बना। दिल्ली से राजस्थान जाने वाले विदेशी पर्यटकों को जयपुर तक सीमित होना पड़ा, जबकि अजमेर जयपुर से केवल 134 किलोमीटर की दूरी पर है। राजस्थान के समस्त पर्यटक स्थल अजमेर से अधिक समीप है। अजमेर की ऐतिहासिकता, सांस्कृतिकता, पुरातात्विकता एवं सौन्दर्य विविधता लिए हुए है। अजमेर केवल धार्मिक स्थल के रूप में प्रचारित हुआ।

आज धनाढ्य विदेशी पर्यटकों की निरन्तर बढ़ती हुई संख्या (लगभग 1.5 लाख वर्ष 1996 में) संख्या देखकर अजमेर में अंतर्राष्ट्रीय पर्यटन को बढ़ावा देने की बात सोची जा रही है। यद्यपि हवाई अड्डा बनाने का निर्णय अभी अधर में लटका हुआ है और पर्यटन के लिए आधारभूत सुविधाओं को उपलब्ध कराने की दिशा में भी सरकार ने विशेष प्रयत्न अभी तक नहीं किया है। भारतीय पर्यटन विकास निगम अथवा भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध

परिषद् जैसी संस्थाओं के प्रयत्नों द्वारा अजमेर में अंतर्राष्ट्रीय पर्यटन को गति मिलेगी, ऐसी आशा है।

अजमेर में विशेष दर्शनीय स्थलों में 'अढाई दिन का झोंपड़ा' 1153 ई. में प्रथम राजपूत शासक वीसलदेव ने संस्कृत महाविद्यालय के रूप में बनवाया था। इसके बाह्य व आंतरिका भागों की खूबसूरत बारीक नक्काशी व इसमें विद्यमान अभिलेख भारत की किसी भी ऐतिहासिक इमारत से अधिक दर्शनीय है। इस संदर्भ में लेख में दिए गए जनरल कनिंघम व फर्ग्यूसन के कथन को दोहराना अतिशयोक्ति नहीं है। शहाबुद्दीन गोरी व कुतुबुद्दीन ऐबक का भारत में सर्वप्रथम वास्तुकला-निमार्ण कार्य भी यहीं पर हुआ।

तारागढ़ का अभेद्य किला 7वीं शताब्दी में 'गढ़ बीठली' और बाद में 'अजयमेरू दुर्ग' के नाम से जाना गया। अजमेर व दिल्ली के शासक पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) यहीं से शासन करते थे। अभी हाल ही में घोड़े पर सवाल उनकी एक मूर्ति स्थापित हुई है और अजमेर प्रशासन द्वारा सौंदर्यीकरण के अन्य कार्य भी किए गए हैं। यह किला हिन्दू, मुस्लिम व ब्रिटिश संस्कृति के अद्भुत समन्वय का प्रतीक है। यहां लाल किले की भांति लाइट एण्ड साउन्ड कार्यक्रम सोचा जाना चाहिए।

'मैगजीन' अथवा संग्रहालय को बादशाह अकबर ने 1576 ई. में अपना निवास व राजस्थान एवं गुजरात के लिए अपना मुख्यालय बनाया। बादशाह जहांगीर (तीन वर्ष) शाहजहां व औरंगजेब भी क्रमशः यहीं रहे। 1857 ई. में नसीराबाद विद्रोह के दौरान अंग्रेजों ने भी इसी जगह शरण ली। संग्रहालय में तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के सिक्के, शिलालेख व प्राचीन देवी-देवताओं की मूर्तियां हैं।

'आनासागर' भारत की एक प्रमुखतम ऐतिहासिक एवं रमणीय झील है। जिसे पृथ्वीराज चौहान (तृतीय) ने पितामह आना जी ने 1135 ई. से 1150 ई. (15 वर्ष) में बनवाया। बादशाह जहांगीर ने इस झील के समीप दौलतबाद का निमार्ण कराया। शाहजहां ने 1637 ई. में संगमरमर की पांच बारादिरयां अपने आरामगाह के लिए बनवायीं। उल्लेखनीय है कि किसी भी मुगल शासक द्वारा संगमरमर से निर्मित और मुगल शैली की नक्काशी की ये प्रथम इमारते हैं। इनमें मुगल वास्तुकला का अनुपम व मौलिक उदाहरण मिलता है। आगरा का ताजमहल और दिल्ली किले के दीवान-ए-खास में यहां की झलक मिलेगी। क्योंकि ये बाद की इमारतें हैं। ब्रिटिश शासक भी इस झील के समीप भोजन लेने में अपना गौरव समझते थे। भारतीय पर्यटन विकास निगम व भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् का ध्यान यहां की ओर भी दिलाया जाना आवश्यक है। यहां टापू पर रेस्तरां, लाईट एन्ड साउन्ड कार्यक्रम की व्यवस्था होनी चाहिए। फॉयसागर एक अन्य झील है जिसका निर्माण 1891 ई. में एक अंग्रेज इंजीनियर द्वारा किया गया था। पर्यटकों द्वारा नौका विहार और घुड़सवारी की संभावना यहां भी बहुत अधिक है।

तारागढ़ के पश्चिम में स्थित एक खूबसूरत झरना है जिसे बादशाह जहांगीर ने 'चश्मा-ए-नूर' कहा है। इसके सौन्दर्य को उन्होंने अपनी पुस्तक 'तुजाक-ए-जहांगीरी' में वर्णित किया है। 1 मार्च 1616 ई. को सर टॉमस रो भी इसे देखकर आश्चर्यचकित हो गए थे।

ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की विश्वविख्यात दरगाह हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के समन्वय की पराकाष्ठा है। यहां एक तहखाने में भगवान महादेव की मूर्ति पूजा होती है। ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह को ऐतिहासिक और वास्तुकला की दृष्टि से भी देखा जाना चाहिए। ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती मूलतः अफगानिस्तान के थे और चिश्त गांव में फकीरों के चिश्ती संप्रदाय के ख्वाजा उस्मान हारूनी के वे शिष्य बने। अतः उन्हें चिश्ती नाम से पुकारा गया और वे शहाबुद्दीन गोरी के साथ 1192 ई. में भारत आए। उनका देहान्त 97 वर्ष की आयु में मार्च 1236 ई. को हुआ। लेकिन निश्चित दिन की जानकारी न होने की वजह से 6 दिन का 'उर्स मेला' मनाया जाता है। दरगाह की सबसे खूबसूरत इमारत 'जामा मस्जिद' 1638 ई. में शाहजहां ने बनवाई। यहां की कव्वाली व 'तबर्रूख' (प्रसाद) निकालने और बांटने का दृश्य देखने लायक होता है। ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती के देहान्त से लगभग सवा दो सौ साल तक दुर्भाग्य से उनकी मज़ार एक सामान्य मस्जिद थी।

पुष्कर अजमेर से 11 किलोमीटर दूर तीन तरफ से पहाड़ियों से घिरा हुआ है। पुष्कर में मेला इस वर्ष 10 नवम्बर से 14 नवम्बर तक लगेगा। पिछले वर्ष (1996) में लगभग 5 हजार विदेशी पर्यटक इस मेले में आए थे। प्रमुख मंदिरों में ब्रह्मा का मंदिर, पंचमुखी अत्मातेश्वर महादेव, श्री रंग जी, वाराह जी एवं सावित्री माता का मंदिर है। पुष्कर सरोवर के चारों ओर घाटों में गऊ घाट व ब्रह्मघाट प्रमुख हैं। पुष्कर में वर्ष 1996 में गेस्ट हाऊसों की संख्या 72 से 107 हो गयी है। अंतर्राष्ट्रीय पर्यटन के क्षेत्र में यदि भारतीय पर्यटन विकास निगम द्वारा यहां कार्य किया जाये तो देश को अपार विदेशी मुद्रा प्राप्त हो सकती है।

अजमेर के अन्य दर्शनीय स्थलों में लाल पत्थर से बना जैन मन्दिर (नसिया), मेयो कॉलेज, सर्किट हाऊस, अजमेर क्लब, बादशाही इमारत, बड़ा पीर की मज़ार, चिल्ला ख्वाजा साहब, चिल्ला कुतुब साहब, चामुंडा माता का मन्दिर, खोबरा भैरू का मन्दिर, बजरंगगढ़, बापूगढ़ और गणेशगढ़ उल्लेखनीय है। उपर्युक्त मन्दिर पहाड़ियों में है और प्राकृतिक सौंदर्य के लिए भी दर्शनीय है। पंचकुण्ड, अजयसर इत्यादि पिकनिक स्थल हैं।

अजमेर के सांस्कृतिक त्यौहारों में गणगोर और तीज के अतिरिक्त होली के दौरान बच्चों के द्वारा 'सांझी' और 'गुडला' गीत गाए जाते हैं। लोक कलाकार मुख्य रूप से सारंगी, इकतारा, ढोल व छोटी बांसुरी का प्रयोग करते हैं। 'घूमर' और 'गैर' नृत्य अनेक अवसर पर किए जाते हैं। 31 मार्च को शीतला माता का मेला राजस्थान में केवल अजमेर में ही लगता है। इस मेले में राजस्थान के लोक कलाकार व दस्तकार बहुत बड़ी संख्या में आते हैं। अजमेर के अन्य प्रमुख मेलों में तेजा जी का मेला सभी वर्गों द्वारा मनाया जाता है और दर्शनीय है। □

गीत समय फिर ...

कुबेर दत्त

मैं आलोचक नहीं हूं और आलोचक न बन पाने के कारण कवि हूं—यह भी नहीं है। आलोचक बनना कितना ही गंभीर और क्रियेटिव हो, पर मेरी मुक्ति कवि बने रहने में मुझे ज्यादा संगत नज़र आई। आलोचना का मर्म भी वे ही अधिक जानते हैं जो आलोचक हैं। जिस तरह कविता करना हज़ार मरण है (निराला की पंक्तियां—'मरा हूं हजार मरण') उसी तरह उस हजार मरण को पहचानना और उसकी व्याख्या-मीमांसा करना भी हज़ार मरण से कम न होगा, वरना डॉ. नामवर सिंह ने यह न लिखा होता—"कुछ लोग एक दिन मरते हैं लेकिन कवि इस जीवन के रास्ते से रोज़मर्रा की जिन्दगी के धक्के खाते हुआ चलता है और रोज़ मरता है।" कविता मरण ही है। सच्चा कवि हर कविता के साथ मरता है और नया जन्म लेता है। जिस कवि को यह अनुभूति नहीं होती वह अनुभव नहीं करता और घास काटता है, उसे फ़िल्मों में जाकर लिखना चाहिए—कविता के सीरियस धंधे में नहीं पड़ना चाहिए। मरा हूं हज़ार मरण—इसलिए उन्होंने कहा कि मैं वरण करूंगा हे जननी, ये जो तुम्हारे दुख-हरण चरण हैं—"मैं करूं वरण जननी दुख-हरण पद राग रंजित मरण।"

तो, जब कवि और आलोचक दोनों इस मरण में शामिल हैं तब वह क्या बात है कि अपने समय में एक कवि को अपने ही बारे में चौंतीस पृष्ठों की भूमिका लिखने पर मजबूर होना पड़ता है। यहां यह भी याद दिलाऊं—लंबी भूमिकाएं, बाजवक्त निराला को भी लिखनी पड़ी थी और उनके पास इसकी वजह थी कि जो लोग कविता में अंतर्निहित संगीत से बिदकते, दूर भागते हैं, या काव्य में, गीतात्मकता से नाक भौं सिकोड़ते हैं या छन्द के सौंदर्य से उन्हें दुर्गंध आती है, ऐसे पोंगापंथियों और साथ ही अपने जैसे काव्य-संगीत-रसिको को निराला एक ही वक्त में संवाद के दायरे में ला खड़ा करते थे। 'उदभ्रांत' एक समर्थ कवि, गीतकार, गज़लकार हैं। खूब छपे भी हैं, पहले के कई-कई संकलन भी

प्रकाशित हैं, कविता के अतिरिक्त अन्य विधाओं में भी लिखते रहे हैं—उन्हें क्यों एक लम्बी भूमिका लिखनी पड़ी, जहां तक मैं समझ पाया—जो चिन्ता उन्हें बराबर सालती रही होगी वह यह होगी कि उन्हें लगा हो कि चूंकि वे कई-कई मरण मरते रहे हैं पर किसी तारतम्यता में आलोचना के मरण ने उनके मरण की तरफ पूरा ध्यान नहीं दिया। आशीर्वादी मुद्राएं धारण करना कितना घातक होता है या वाहवाही के हिमालय पर प्रतिष्ठित कर देना जितना अश्लील है, उससे भी बुरा है कवि के मरण के मरण से बचकर अपने मरण को बचाना यानी ... अब इस यानी, अर्थात् या दूसरे शब्दों में का माकूल हिसाब किताब तो अध्यापकगण ही दे सकते हैं।

मुझे उद्भ्रांत के गीत अच्छे लगते हैं। उनमें शिल्प की सादगी भी है और पुरकारी भी, बेखुदी भी है, होशियारी भी (गालिब के यहां भी यह विशेषता है।) उनके गीतों में ऐतिहासिक और सांस्कृतिक प्रवहमानता है। अपने समय से दो चार होने का साहस है तो विपरीत परिस्थितियों के दंश भी। उनके पुराने संग्रह 'हिरना कस्तूरी' की भूमिका से उद्धृत एक गीत की पंक्तियां मेरी बात को आधार देती हैं—

कितने ही श्वेत बिन्दु लाल हुए
दर्पण थे फौलादी ढाल हुए
एक आग का पहाड़ पिघला
तटवर्ती मेघ हाथ तापने लगे।

पता नहीं क्यों मैं 'गीत' 'प्रगीत' 'नवगीत' 'अगीत' आदि शीर्षकों के तहत गीतिकाव्य के बारे में नहीं सोच पाता। गीत गीत है—चाहे उद्भ्रांत भी अपने नये संग्रह का शीर्षक यह रखते हों—'लेकिन यह गीत नहीं। इसी खंड का पहला गीत—'बहुत दिनों बाद खण्ड में उनका एक ऐसा उद्धरणीय गीत भी है, जो पूरी बात कह देता है—

"बहुत दिनों बाद एक गीत लिखा है
लेकिन यह गीत नहीं पिछले गीतों जैसा
यह यथार्थ की
टेढी गलियों में घूमा है
इसने खुरदुरा वक्त का चेहरा चूमा है
यह पानीदार ख़्वाब नहीं है
फिर भी इस का जवाब नहीं है
बहुत दिनों बाद एक स्वप्न दिखा है

लेकिन यह स्वप्न नहीं पिछले स्वप्नों जैसा
इसमें लाजिमी गंध नहीं है
वही घिसापिटा छंद नहीं है
इसमें लिजलिजी गंध नहीं है
वह घिसापिटा छंद नहीं है
इसमें संस्पर्श गद्य का भी मिल जायेगा
शब्द शब्द अनगढ़ सांचे में ढल जायेगा
यह पिघली हुई पीर नहीं है
इसकी कोख में नीर नहीं है
बहुत दिनों बाद एक जख्म पका है
लेकिन यह जख्म नहीं पिछले जख्मों जैसा
लेकिन यह गीत नहीं पिछले गीतों जैसा।''

इस संग्रह के कवर पर सुधी आलोचक डॉ. कर्ण सिंह चौहान की टिप्पणी का एक अंश यहां संदर्भित करना जरूरी लग रहा है। वे लिखते हैं—'इन गीतों में विषय और वस्तु के स्तर पर समकालीन हिन्दी कविता के सरोकारों तथा गेयता, लय और रागात्मकता के रूप में गीत की शुद्धता का जो एकत्र निर्वाह दिखाई पड़ता है वह दुर्लभ है। यही कारण है कि उद्भ्रांत के गीत आस्वाद के स्तर पर लगभग वही प्रभाव छोड़ते हैं जैसा शास्त्रीय संगीत में शुद्ध राग जहां शब्दों और उनके अर्थों का विशेष महत्व नहीं रहता।'

बहुत दूर तक डॉ. चौहान की इस बात से मैं सहमत नहीं हूं कि शास्त्रीय संगीत में शुद्ध राग में शब्दों-अर्थों का विशेष महत्व नहीं रहता (अर्थात केवल शास्त्रीयता का रहता है—या संगीतात्मकता का रहता है।) जरा सोचें—कुमार गंधर्व जब कबीर गाते हैं या तुलसी गाते हैं—तब क्या महत्वपूर्ण होता है? कुमार जी की आवाज? उनकी रागात्मकता? उनका संगीत? कबीर की या तुलसी की पंक्तियां? मेरा ख्याल है—सब मिलकर नयी प्रभाव-सृष्टि करते हैं क्योंकि शब्द, राग, संगीत, सभी की स्वतंत्र सत्ताएं हैं—और जब ये सब मिलकर कुछ रचती हैं तो एकमेव हो जाती हैं—हरेक का सौंदर्य निखर जाता है—इस लिहाज से इसी संग्रह के कुछ गीतों की ये पंक्तियां देखिए—

'धुंध-धुंध बीमारी
नस्लगत महामारी
जीती है
बूढ़ी यह बीसवीं सदी

चेहरे पर
है असंख्य झुर्रियां
झुकी कमर
खास रही ...
......
......
घुटन अब लाचारी
सागर का जल खारा—
पीती है
बूढ़ी यह बीसवीं सदी'

या फिर ये पंक्तियां—

'ज्यों ही मैंने पलकें खोलीं
मावस में डूबे पल
करकने लगे ...
......
कंचन-क्षण
आग में तपाये
कुंदन जब हुए
दूर
सरकने लगे'

या ये पंक्तियां भी—

''मछुआरे
अब यह निर्मल बंसी
खींच ले
बंसी
जिस पल तूने डाली थी
उस पल से
बिंधी हुई है
एक आग—
अंधियारे की

निर्जल प्राणों में
रूंधी हुई है
अंधियारे
अब तो पापी पलकें
भीच ले।

उद्भ्रांत के गीतों को गहरी तन्मयता के साथ रागबद्ध करके गाया जा सकता है क्योंकि ये संगीतहीन-रागहीन-छंदहीन संरचनाएं नहीं हैं। दूसरी तरफ गाया जाना किसी रचना की अर्थवत्ता को कम नहीं करता बल्कि संगीतबद्ध होकर रचना के अर्थ और भी सुस्पष्ट होते हैं, उनकी व्याप्ति ज्यादा होती है। गाने को तो इतिहास और भूगोल की किताब भी गायी जा सकती है। लेकिन ज़ाहिर है गीत में और भूगोल में फ़र्क है।

इस संग्रह के गीतों को पढ़कर दो बातें और भी स्पष्ट होती हैं कि एक तरफ़ तो ये गीत हैं और गीत की परम्परा के वाहक हैं दूसरी तरफ इनमें मात्र भावना या मन की कुलांचें या रोमानी फलक नहीं है—ये गीत वर्तमान की काली सफेद आयतों के बीच जारी घमासान को जगह देते हैं; *'वर्तमान जख्मी उसका हुआ, लिपि जिसने पढ़ रखी थी भविष्य की, यह अपनी संस्कृति बनवास हमें लग रही, पश्चिम के प्रति, हममें प्यास अजब जग रही, वक्त बहुत बदल गया, इसे नहीं ज्ञात है, बना हुआ सतयुग के बामन की जात है, आग की इस सेज पर, सोये हुए हैं हम', 'अपनी ताकत में फूला है, ऐंठा है, एक जानवर पूजाघर में बैठा है, 'चेतना समय की थी जहां, अभी वहीं है अंधियारे की सत्ता, फैली सब कहीं है', 'कई दिनों से, एक कांच दिल के टुकड़े टुकड़े करता पता न चलता कौन, शिराओं में बारूदी लेय भरता, 'कान देकर सुनो, सन्नाटा यहां पर गुनगुनाता है, एक गूंगा छंद, दिल के बीच बैठ। कुनमुनाता है, 'अब न सुनाई देती छंद की पुकार, उतर गया है मन से गंध का खुमार' 'पानी में रंग सभी घुल गये, छंदों के जोड़ जोड़ खुल गये' 'जीवन के रंग बिखेरे हैं जो छायाश्रम हैं'*

कवि अपने वर्तमान से निरंतर भिड़ रहा है और हारा नहीं है। वर्तमान यकीनन क्रूर है, डरावना और कटखना है। सत्ताओं का झूठ किंवदंतियों में बदल रहा है, परियों की कहानी की जगह हवाला कथाएं जगह बना रही हैं और घर परिवारों को ठेंगा दिखाते फिल्मी गीतों से चुम्मों और वक्षों की तोड़फोड़ बरस रही है, जनतंत्र के नगाड़ों से मृत्यु उपत्यकाएं जन्म ले रही हैं तथा साहित्य-संस्कृति-कला की दुनिया में भी दुरभिसंधियां और षडयंत्र और बाजारूपन बढ़ रहा है—ऐसी दुरावस्था में भी कवि उद्भ्रांत अपने मन और लेखन की अस्मिता बचाकर चल रहे हैं—यह हमें आश्वस्त करता है और यकीन दिलाता है कि मूल्यों की जगह और जरूरत है कि पोज़िटिव और नेगेटिव के बीच लड़ाई जारी है और कि कवि कर्म श्रेष्ठ मानवीय कर्मों में से एक है। 'लेकिन यह गीत नहीं' संग्रह को इसकी वस्तु और

इसके शिल्प दोनों ही दृष्टियों से पाठक और आलोचक का प्यार मिलेगा—ऐसी उम्मीद बंधाता है यह गीत-संग्रह। संग्रह को एक बार फिर पढ़ने पर आंखें भी डबडबा आईं। क्योंकि यह संग्रह छपने के कुछ समय बाद ही इसके कवर डिजाइनर भाई करूणानिधान का देहांत हो गया। 'लेकिन यह गीत नहीं' का कवर ठीक करूणानिधान की तरह है सादा और इसीलिए सुन्दर। कवि ने इस संग्रह में कई स्थलों पर आशावादिता का आलोक सृजित किया है जो इस संग्रह की गंभीरता और इस वक्त में कविता की ताक़त का प्रतीक है। अंत में उद्भ्रांत की ही पंक्तियों से समापन करता हूं—''गीत कभी फिर लिखने लगा तो बता देना कोरे कागज हम बन जायेंगे। □

'लेकिन यह गीत नहीं' कवि उद्भ्रांत का गीति-काव्य-संग्रह, प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन/मूल्य सौ रुपए

मानवीय मूल्यों को समर्पित कहानियां

डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

रामदरश मिश्र के इस नये कहानी-संग्रह के फर्क को रेखांकित करने के साथ-साथ कहानी की रचनाप्रक्रिया और उसके प्रतिपाद्य की चर्चा सहज भाव से हो गयी है। संबंधित संवाद इस प्रकार है—

"... देखो, ये कहानियां हैं, ये लिखी नहीं गयी हैं, घटित हुई हैं जिन्दगी में, इसलिए लेखक की कलात्मक काट-छांट के बिना भी जानदार कहानियां हैं। लेखक इन्हीं कहानियों को काट-छांट कर एक उद्देश्य प्रदान करता है, उनके प्रभाव को और तेज करता है।' ... मेरी कहानियों से समाज का इंसानियत का कुछ भला हो तो मुझे बेहद चैन मिलेगा बाबूजी!"

इस अवतरण में कहानीकार 'सत्य-कथा' लिखने का कायल नहीं है। वह 'कहानी' के सर्जनात्मक और सार्थक होने के लिए सत्यकथा में वांछित परिष्कार-संस्कार के साथ-साथ उसमें सोद्देश्यता की अनिवार्य उपस्थिति का समर्थक है। 'कहानी' से यह अपेक्षा अप्रासंगिक नहीं है कि वह समाज और मानवता के कल्याण के लिए अपने स्तर पर सकारात्मक भूमिका निभाये। एक अन्य कहानी 'कलाकार' में भी मनोरमा के माध्यम से पूछा गया है कि 'क्या आदमी के ठोस दुख-दर्द में शरीक होकर उसको राहत देना कला नहीं है।' जनधर्मिता और सोद्देश्यता की यह अपेक्षा रामदरश मिश्र की कहानियों में हमेशा साकार हुई हैं। 'खालीघर', 'एक वह', 'दिनचर्या', 'सर्पदंश' आदि पूर्ववर्ती कहानी-संग्रहों और इस नये कहानी-संग्रह की अधिकतर कहानियों में आम आदमी के दुख-दर्द से जुड़े सोद्देश्य लेखन के प्रमाण बराबर मिलते रहते हैं।

संग्रह की 'दक्षिणा', 'लेकिन', 'झगड़ा' 'कहानी का प्लाट और खलिहान' आदि

कहानियां समाज के आर्थिक अभावों में लिथड़े पिछड़े वर्ग के जीवन-संघर्ष पर आधारित है। जिस वर्ग की बेहतरी के लिए नारे उछल रहे हैं, आंदोलन किये जा रहे हैं, सरकारें बन-बिगड़ रही हैं, उसकी वास्तविक स्थिति को 'लेकिन' कहानी में पढ़ा जा सकता है। एक गंवार मेहनतकश औरत जिस सच्चाई को जान रही है, जी रही है, पिछड़े वर्ग के तथाकथित नेता उससे अनभिज्ञ हैं—"न अपने खेत हैं न अपना घर है। अपनी मेहनत भी तो अपनी नहीं होती बाबूजी! अगर लोग अपनी मेहनत के मुताबिक मजूरी न मिलने पर काम छोड़ देने की चेतावनी देते हैं और अपनी बहू-बेटियों के साथ होने वाली छेड़खानी के खिलाफ आवाज उठाते हैं तो बरबाद कर दिये जाते हैं। पुलिस भी उनकी, नेता भी उनके, कचहरी भी उनकी।" दो महत्वपूर्ण किन्तु कटु सत्य इस कहानी से छनकर पाठक तक भलीभांति पहुंचे हैं। एक तो यह कि शोषित-उत्पीड़ित वर्ग की असली बीमारी भूख और गरीबी है और दूसरी विडम्बना यह है कि इस वर्ग के नेता सारी सामाजिक लड़ाई अपने क्षुद्र स्वार्थों के तहत लड़ रहे हैं। डॉ. अम्बेडकर ने दलित-उत्थान के सूत्रों में 'शिक्षा' को बहुत महत्व दिया था। रामदरश मिश्र भी 'शिक्षा' के सही इंतजाम में 'आरक्षण' की सही भावना को चरितार्थ होते पाते हैं : "बाबूजी, अपने नेताओं से कहिये कि वे पत्ते न पकड़ कर, जड़ पकडेंगे। ... यह तभी होगा जब तमाम गरीब बच्चों को स्कूल भेजा जाये और उनके माई-बाप को उतने पइसे की मदद दी जाय, जितना वे कमा कर उन्हें देते थे।" संग्रह की एक छोटी कहानी 'दक्षिणा' में श्रमजीवी वर्ग में उगते आक्रोश-भाव का संदर्भ है। 'गोदान' की धनिया ने असहाय भाव से अपनी मेहनत की कमाई पुरोहितवाद के प्रपंच को सौंप दी थी लेकिन 'दक्षिणा' का माधो सारे कर्मकांड को खारिज कर देता है : "रहने दो पंडित अपना पूजा पाठ। मेरे बाबू अपने बेटे और पोते के मुंह से दूध छीन कर खुद नहीं पीना चाहेंगे। जाओ पंडित जी, अपने घर जाओ, मेरे बाबू की आत्मा भटकने दो। और सुनो आत्मा भटकती है पापियों की। मेरे बाबू पापी नहीं थे।" यह अवतरण दीन-दलितों की मुक्ति को उन्हीं के भीतर जन्मे विद्रोह भाव के माध्यम से संभव मानता है। श्रमजीवियों के मनोविज्ञान और वर्गीय चरित्र को उद्घाटित करने की दृष्टि से 'झगड़ा' भी विचारोत्तेजक बन पड़ी है।

'आज का दिन भी' शीर्षक कहानी में कहानीकार एक कवि की कविताओं को इस आधार पर सराहता है कि उनमें 'मनुष्य और परिवेश का बड़ा सहज और मार्मिक संवाद' है। यह संवाद-मुद्रा इस संग्रह की 'रमजान मियाँ' और 'चक्र' जैसी कहानियों में विशेषतः मुखर है। गतवर्षों में साम्प्रदायिकता की जो आंधी चली है, उसमें अनेक वटवृक्ष धराशायी हो गये हैं। अयोध्या-कांड की त्रासदी ने प्रायः प्रत्येक संवेदनशील रचनाकार को आंदोलित किया है, झकझोरा है। लेकिन प्रतिकूल परिस्थितियों में भी 'मनुष्यता' निःशेष नहीं हुई है, रहमत मियां और शरीफ भाई इसके जीवन्त प्रमाण हैं। रहमत मियां ने एक हिन्दू के बच्चे को पाला है और उसे नाम दिया है—'मोहन अली'। रहमत मियां दंगाइयों के सामने छाती

तानकर खड़े होते हैं : "मैं न हिन्दू हूं न मुसलमान। सब मेरे भाई हैं।" इस कहानी के अंत में सरदार युवक मोहन अली की परवरिश और शिक्षा की जिम्मेदारी लेने के लिए आगे आता है और कहानी निराशा की तंग गली में ठिठक जाने के बजाय संभावना की नयी पगडंडी पर चल निकली है। 'चक्र' में बाबरी मस्जिद के ध्वंस के बाद का इतिहास खंड पृष्ठभूमि में है, जब हिन्दू-मुस्लिम नेता और महंत अपने-अपने महलों में सुरक्षित रहे और आम जनता नफरत की आग में जलती रही थी। शरीफ भाई पाकिस्तान विरोधी हरकतों और मजहबी नेताओं के तकरीरों से सहमति नहीं रखते। लेकिन दंगे में उनका मकान जला दिया जाता है और वे बाध्य होकर एक गंदी मुस्लिम बस्ती में शरण लेते हैं। वहां भी वे पूरी तरह मिसफिट हैं, उनकी बेटी शोहदों की गंदी हरकतों से परेशान होती है। शरीफ भाई जैसे भारतीय और धर्म-निरपेक्ष सोच के मुसलमानों की दुहरी यातना को यह कहानी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करती है। ये दोनों कहानियां इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि स्व. शानी जैसे बहुत से लेखकों को यह शिकायत रही है कि हिंदी कथा-साहित्य में मुसलमानों का चित्रण नकारात्मक नजरिये से ही अधिक हुआ है। इन कहानियों में पारस्परिक सद्भाव पर बल देने के साथ-साथ यह भी अहसास कराया गया है कि हमारी मूल समस्या मजहब नहीं, भूख और अभाव है : "मजहब के नाम पर पागलपन फैलाने वाले इन वहशियों को क्या लगता है कि ईश्वर या खुदा उनसे खुश होता है। खुदा ने पेट तो बनाया है, मजहब नहीं। और उसके लिए तो मजहब की निस्वत आदमी का पेट ज्यादा जरूरी और महत्वपूर्ण लगता होगा।" इस तरह के अवतरण जहां कहानी को 'भावुक होने से बचाते हैं' वहीं रचनाकार के यथार्थवादी सोच का प्रमाण देते हैं। हालांकि कुछ पाठकों और आलोचकों को 'रहमत मियां' कहानी में बच्चे का नाम मोहन अली रखना और आखिर में हिंदू-मुसलमान-सिख की एकजुटता भावुकतापूर्ण और फार्मूलाबद्ध लग सकती है लेकिन 'चक्र' जैसी कहानी का कथ्य न केवल नया है अपितु किसी तरह की भावुक आकांक्षा या नाटकीय आशवाद से मुक्त भी है।

इस संग्रह की कहानियां परिपक्व कलम की सृष्टि होने के कारण भाषा और वर्णन-पद्धति की दृष्टि से सहज और कलात्मक है। शिल्प को अतिरिक्त चमक और मजाव देने की ललक इनमें नहीं है। लेकिन सहज अभिव्यक्ति के भीतर से गंभीर और दूरगामी व्यंजनाएं फूटती हैं। अपनी कहानी-यात्रा के इस दौर में रामदरश जी घटना या चरित्र-विलक्षणता पर कतई निर्भर नहीं हैं। मनःस्थितियों का सूक्ष्म-वर्तुल-विशद विश्लेषण कहानियों की बुनावट में मुख्य भूमिका निभाता है। संग्रह की 'नेता की चादर', 'चक्र' और 'आज का दिन भी' आदि कहानियां विक्षोभपूर्ण विचार-प्रवाह के रूप में है और अनायास ही विसंगतियों के कांस-सेवार इनमें उखड़ते-बहते दिखायी देते हैं। कुछ कहानियों में छोटी घटनाएं या सामान्य सूचना भी खासी महत्वपूर्ण है। 'लेकिन' में छोटे बच्चे रिक्शा चलाना, 'दक्षिणा' में माधो

का गाय की गर्दन से लिपटना, 'झगड़ा' में एक सब्जी वाले का दूसरे को डॉक्टर के यहां ले जाना, अभिनंदन ग्रंथ में लिफाफे के दो टुकड़े किया जाना आदि क्रियाएं और विवरण कभी अवसाद से भर देते हैं तो कभी मन को छू जाते हैं। अन्तर्वस्तु और शिल्प दोनों स्तरों पर इस संग्रह की कहानियां किसी मुहावरे या कठघरे में कैद न होकर ताजगी का एहसास कराने में सफल हैं। □

आज का दिन भी : डॉ. रामदरश मिश्र, विद्या पुस्तक सयन अम्बेडकर मार्ग दिल्ली-110093 मूल्य : 120 रुपए

अनुराग का मानवीकरण

डॉ. चंद्रिका प्रसाद शर्मा

'ठोस परिपक्वता की ओर' डॉ. वीरेन्द्र सक्सेना का नवीनतम 'कथा-काव्य' है। किंतु इसे 'कथा-काव्य' न कहकर मैं प्रेम-काव्य ही कहूंगा, क्योंकि प्रबंधात्मक शैली में लिखा कोई भी काव्य, 'कथा-काव्य' तो होगा ही। उसे मुक्तक काव्य मानना गलत है, क्योंकि पूरा काव्य एक भुक्तभोगी प्रेमी की प्रेम-कथा है—यानी उसमें 'प्रेम' या 'अनुराग' का मानवीकरण करके एक नया नायिका-भेद प्रस्तुत किया गया है।

'अनुरागी अनुराग', 'प्रियतम प्रिया', 'सौंदर्यमयी सुस्मिता', 'प्रेरणाप्रद प्रतिभा', 'करोड़-कामी काम्या', 'संघर्षशील शिवा' और 'आनंददात्री अक्षया' आदि शीर्षक खंडों में विभाजित यह काव्य-कृति प्रेमी 'अनुराग' की सफलताओं और असफलताओं का सम्यक चित्रण करती है और कई स्थलों पर प्रेमी को 'बेचारा' भी बना देती है। बेचारा इस अर्थ में कि कई बार बेआबरू होकर भी नायक अपनी लत या टेंव नहीं छोड़ता।

काव्य की कथा भी बड़ी रोचक है। उसमें नायक 'अनुराग' विभिन्न नायिकाओं के संपर्क में आता है। इसी संपर्क-संसर्ग से वह अपनी नायिकाओं के प्रति विशिष्ट गुणों के कारण आकर्षित होता है और क्रमशः उनके प्रति अनुरक्त हो जाता है। इनमें पहली नायिका है 'प्रिया', जो मन से बड़ी भोली और भली है, किंतु उतनी ही कमजोर भी है। वह अपने भाई के विरोध के कारण नायक से विवाह नहीं कर पाती। अतः नायक को निराशा के गर्त में ढकेल देती है। वह कहता है—'ओ प्रियतम किंतु कठोरतम प्रिया/क्या मैं अन्यत्र किसी बेगाने शहर में/जाकर फोड़ लूं अपना सर!'

उज्जैन से निराश नायक 'प्रिया' से विमुख हो बम्बई पहुंच जाता है, क्योंकि उसकी

नियुक्ति आयकर विभाग में हो जाती है। वहां वह अत्यंत रूपवती नायिका 'सुष्मिता' के संपर्क में आता है तो वह उसके प्रति भी आसक्त हो जाता है। किंतु वहां भी उसे निराशा ही हाथ लगती है, क्योंकि सुष्मिता उससे साफ-साफ कह देती है—'मैं अभी विवाह-बंधन में नहीं बंधूंगी/मैं तो मुक्त आकाश में विचरण करूंगी।'

यह है चोट पर चोट। पहली चोट का दर्द अभी मिटा नहीं था कि दूसरी चोट उसे सहनी पड़ी तो तिलमिलाहट होती है। बेचारा यह नायक तिलमिला कर रह जाता है। और चारा भी क्या?

खैर नायक को तीसरा अवसर मद्रास में मिलता है, जहां वह एक बुद्धिवादी 'प्रतिभा' के संपर्क में आता है। यहां प्रतिभा चूंकि बुद्धिवादी है, इसलिए नायक के प्रेम-निवेदन से प्रभावित होती है, किंतु अंततः बेहतर नौकरी के लिए मद्रास छोड़ गुवाहाटी चली जाती है। नायक को यह तीसरी चोट लगती है, लेकिन क्या करे बेचारा?

नायक इसके बाद आयकर आयुक्त बनकर कलकत्ता चला जाता है। वहां उसे एक और नायिका मिलती है, जो अत्यंत धनी है, संपन्न है। नायक इस नायिका के प्रति भी अनुरक्त हो जाता है, उसके साथ घूमता-फिरता है, किंतु अंततः यह नायिका भी नायक को रास नहीं आती, क्योंकि वह नायक की बजाय अपने व्यवसाय को अधिक महत्व देती है। यह है नायक की चौथी चोट। वह सोचता है—

उज्जैन में प्रेम की असफलता
कारण, प्रिया की अनुभव हीनता।
बम्बई में प्रेम की असफलता,
कारण, सुस्मिता की प्रदर्शनप्रियता।
मद्रास में प्रेम की असफलता,
कारण, प्रतिभा की उच्च आकांक्षाएं।
कलकत्ता में प्रेम की असफलता,
कारण, काम्य की महत्वाकांक्षाएं।

किंतु बेचारे साहसी नायक की हिम्मत की तारीफ करनी होगी कि असफलताएं उसकी हिम्मत पस्त नहीं कर पातीं। वह पुनः साहस जुटाता है और स्थानांतरित होकर दिल्ली आ जाता है। दिल्ली में उसे एक नई नायिका 'शिवा' मिल जाती है। वही आगे चलकर नायक की 'अक्षया' बन जाती है और उसी के माध्यम से नायक अपने प्रेम में भी सफलता पा लेता है। इसका नायक 'अनुराग' प्रयत्न करते-करते अंततः अपनी आयु के 50 वर्ष पूरा करने पर अपने प्रेम को प्रेम-विवाह में बदल पाता है। नायक को इसी में संतोष भी हो

जाता है, क्योंकि वह अपने 'अंतिम प्रेम' की सफलता को 'महान सफलता' मान लेता है—

मैं और तुम मिलकर
अपने प्रेम-प्रतीक के रूप में
दुष्यंत-शकुंतला की तरह
कोई 'भरत' उत्पन्न भले न कर पाएं,
पर हमारा यह 'आख्यान' ही
हमारी मानस-संतान के रूप में
प्रसिद्धि पा सकेगा देश-देशांतरों में।

अस्तु, नायक 'अनुराग' की अनेक मानवीय कमजोरियों के बावजूद डॉ. वीरेंद्र सक्सेना की काव्य-कृति अपने ढंग की अकेली कृति है। इसमें कथा के द्वंद्व के कारण उसकी रोचकता अंत तक बनी रहती है और अनेक मार्मिक स्थलों पर उनकी भावुकता भी हमें प्रभावित करती है। आज जब काव्य कम पढ़ा जाता है, डॉ. सक्सेना का यह काव्य 'पठनीयता' को बढ़ावा देने वाला एक अलग तरह का प्रयास भी है। यह प्रयास अन्य कवियों के लिए भी अनुकरणीय हो सकता है।

कुछ अन्य कविताओं पर छायावादी कवियों का प्रभाव भी दिखाई दे जाता है। उदाहरणार्थ सुमित्रानंदन पंत की पंक्तियां हैं—'इंदु पर उस इंदुमुख पर/साथ ही थे पड़े मेरे नयन/पूर्व तो पूर्व था/यह द्वितीय अपूर्व था।' इसी तरह की डॉ. सक्सेना की पंक्तियां हैं—'कमरे के बाहर की प्रकृति को/आंखों में उतारूं/या कमरे के भीतर की प्रकृति को/तन-मन से अपना लूं।'

डॉ. सक्सेना के इस काव्य में सीधी-सच्ची बातें बिना किसी चमत्कार-अलंकार आदि के कही गई हैं। फिर भी सीधी-सरल भाषा में भी वक्रोक्ति या रस उत्पन्न हो गया है।

डॉ. वीरेंद्र सक्सेना का यह काव्य यह प्रमाणित करने में सक्षम है कि रीतिकालीन कविताओं के प्रति भी समीक्षकों को नई दृष्टि अपनाने में संकोच नहीं करना चाहिए। जो समीक्षक रीतिकाल और प्रेम-प्रसंगों के नाम पर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, उनके सामने यह कृति एक चुनौती के रूप में आई है। प्रेम, शृंगार, रूप-वर्णन, नायक-नायिका भेद आदि शाश्वत प्रसंग है, उन्हें त्याज्य मानने की बजाय उन पर ढंग से पुनर्विचार भी किया जा सकता है—यही डॉ. सक्सेना ने किया है।

रीतिकाल ने अपने नायिका-भेद के कारण भी अत्यधिक ख्याति पाई थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल तक को लिखना पड़ा था कि इस काल के कवियों ने नायिका-भेद के वर्णन में संस्कृत के कवियों-आचार्यों से बाजी मार ली। रीतिकाल के अवसान के बाद हिंदी कवियों

का यह साहस नहीं हुआ कि वे नायिका-भेद पर कलम चलाते। ऐसा शायद कुछ आलोचकों के आतंक के कारण भी हुआ कि 'प्रेम' को कविता से ही निष्कासित कर दिया गया। किंतु डॉ. सक्सेना साहस के साथ सामने आए और उन्होंने अपनी पांच प्रकार की नई नायिकाएं नायिका-भेद में जोड़ दीं। इस दृष्टि से डॉ. सक्सेना का प्रेमकाव्य अपने आप में एक नई खोज भी है। भले ही यह उन आलोचकों को न भाए, जो कविता को केवल किसी खास तरह की कविता-दृष्टि से देखने के आदी हो गए हैं। □

ठोस परिपक्वता की ओर (काव्य) : डॉ. वीरेन्द्र सक्सेना, नीरज बुक सेंटर भावना प्रकाशन, पटपड़गंज, दिल्ली-110091, पृष्ठ 180, मूल्य 160 रुपए।

अपसंस्कृति को आंकती कहानियां

अकिंचन

हिंदी में कथालेखिका चित्रा मुद्‌गल का नाम परिचय का मोहताज नहीं है। चित्राजी जहां पारिवारिक ताने-बाने के टूटने-बिखरने की जड़े अपनी कहानियों में तलाशती रही हैं, वहीं संवेदना की चादर को तार-तार करने वाली अपसंस्कृति की शातिर मुहिम को भी बेनकाब करती रही हैं। मनुष्य की विपन्न फलसफों ने जिस कदर आदमी को यांत्रिक बना दिया है, वैसे ही संक्रमण काल में चित्रा मुद्‌गल अपनी कथा का ताना-बाना मनुष्य और मनुष्यता को बचाए रखने के लिए अनिवार्य संवेदना के सूत्र से बुनती हैं।

निम्न एवं मध्यमवर्गीय परिवार में स्त्री चेतना व वेदना को गहराई में जाकर व्याख्यायित करने के लिए चित्रा मुद्‌गल का नाम आठवें दशक से चर्चित रहा है। इसी बहुचर्चित कथा लेखिका का नया कहानी संग्रह 'जिनावर' हाल ही में पाठकों के सामने आया है। 'जिनावर' चित्राजी के प्रचलित एवं स्थापित शिल्प के मद्देनजर कई अर्थों में नए पन का अहसास कराती है।

पारिवारिक स्तर पर, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों में नित नए बदलाव और उन बदलावों की बदौलत उपजी विकृतियों को, मानवीय संवेदनाओं के उड़ते परखचे की ओट लेकर, मार्मिक शिल्प में व्यक्त करने में चित्रा मुद्‌गल माहिर है। यह खूबी उनके कथा-संकलन 'इस हमाम में' भी थी और 'जगदंबा बाबू गांव आ रहे हैं' में भी कायम रही। लेखिका के विचारों के इसी धरातल की उपज उनके द्वारा संपादित कहानी-संग्रह भी रहे हैं—जहां पारिवारिक त्रासदी की गहरी जड़ें कहीं न कहीं जीवन और समाज के निरंतर बदलते मूल्यों में रही है। 'दूसरी औरत की कहानियां', 'असफल दाम्पत्य की कहानियां' तथा 'टूटते परिवारों की कहानियां' में संकलित प्रत्येक कहानी यह स्थापित करने की बेचैनी से भरी हुई थी कि बदलते मूल्यों में परंपरा के खिलाफ जाने वाली जो अंधी होड़ है, वह भौतिकवादी आधुनिकता की अंधी दौड़ में विकृतियों को देखने का अवसर नहीं देती।

चित्राजी के समीक्ष्य नए संग्रह 'जिनावर' में संकलित कहानियां उनकी पूर्व स्थापनाओं से भी आगे जाकर वैचारिक गवाक्ष खोलती हैं। जीवन, समाज, संस्कृति में परिवर्तन की अगवानी बेशक तर्क सम्मत और यथा संभव तथ्यसम्मत है, जरूरी और वैज्ञानिक भी, परंतु हमारी विवशताएं भी बेहिसाब और बेशुमार हैं। विकास या प्रगति अनिवार्य है और उसके लिए पारंपरिक जैविक-घटकों के स्वरूप में परिर्वन भी। इस अनिवार्य विकास-प्रक्रिया में आकार लेने वाली विकृतियों को कुचलने की क्षमताएं तथा इस मार्ग से अवतरित अपसंस्कृतियों के खिलाफ खड़े रहने की जिद जैसी चिंताएं हमारे अंदर नहीं हैं। इस संग्रह की एक कहानी 'अढ़ाई गज की ओढ़नी' में मिस्टर सिन्हा इन्हीं विवशताओं को व्यक्त करते हैं—"नए के प्रति आकर्षण स्वाभाविक है ... दुश्मनी हमारी भी नहीं, लेकिन सच्चाई कड़वी है मिसिस सिंह। नए को हम आने तो देते हैं, मगर उससे अगले नए से अभिभूत होकर एक तरह से एक नशे से ऊब दूसरे का मजा चखने को लालायित हो हम उस दुश्चक्र का हिस्सा हो उसे व्यसन बना लेते हैं। विरोध की फुरसत ही कहां होती है?"

'जिनावर' की पहली कहानी है 'प्रेत योनि'। यह एक निम्न मध्यमवर्गीय परिवार की ओढ़ी हुई सामाजिक प्रतिष्ठा को बड़े ही पैनापन, किंतु सादगी से तार-तार करती है। 'प्रेत योनि' की अनिता गुप्ता दिल्ली विश्वविद्यालय की एक ऐसी छात्रा हैं, जिसे सार्थक जीवन मूल्यों से अपने शैक्षिक विकास क्रम के साथ-साथ रिश्ता बनाने का अवसर मिलता है। दिखावे की संस्कृति के शुद्ध अवक्षेप निरंतर यह लड़की अपनी ओढ़नी की गांठ में गांठती चली गई है। अशुद्ध अवक्षेप से कभी वास्ता नहीं पड़ा। यही लड़की अनिता गुप्ता अपनी बहन के घर भोपाल से दिल्ली ट्रेन से वापिस आ रही थी। ट्रेन अचानक दुर्घटनाग्रस्त हो जाने के बावजूद बाल-बाल बची अनिता अपने घर लौटने के लिए टैक्सी में अकेली सफर करती है। रास्ते में टैक्सी वाले उसके साथ बलात्कार की कोशिश करते हैं। वह उन दरिंदों से बहादुरी के साथ जूझती, खुद को बचाती, घर लौट आती है। यह खबर अखबार में छप जाती है। जिस अनिता के जीवित लौटने के लिए मां-बाप हलकान न थे, उसके इस तरह जीवित लौटने से बेहद दुखी हो जाते हैं। (तात्पर्य ऐसे में उसे 'सती' हो जाना चाहिए था!) बचपन से जो पिता उसे पढ़ाने और वैचारिक स्तर पर पुख्ता बनाने के लिए नित नई तरकीबें जुटाते रहे और अपनी बेटी की प्रगतिशीलता पर इतराते रहे, उसी पिता की शान की अट्टालिका मुरमुराकर तब ढह गई, जब उसे यह पता चला कि उसकी बेटी बलात्कारियों से जूझने के बाद यहां पहुंच सकी है। वह अपनी ओढ़ी हुई प्रतिष्ठा को बचाने के लिए एक से बढ़कर एक झूठ रचता है और अनिता को घर में नजर बंद कर देता है। अनिता के पिता अखबारों में छपी खबर वाली अनिता को किसी और की बेटी बताता है। झूठी *प्रगतिशीलता और दिखावटी प्रतिष्ठा में भला इतनी वक़्त कहां* कि वह वैचारिक कठोरता की हकीकत को जमीन पर स्वीकार कर सके। कड़वी आंच में काठ तो तपकर सोना बन

नहीं सकता। "प्रेत योनि" की अनिता के घर का वैचारिक मंडप इस सच की आंच में परपरा कर जल जाता है।

'प्रेत योनि' संग्रह की सर्वाधिक सशक्त और विचारोत्तेजक कहानी है। लेखिका प्रतिष्ठा के ढोंग की पोल खोल यह सिद्ध करना चाहती है कि यह मात्र खोखला आडंबर है, जहां 'विचार' सिर्फ 'ओढे' जाते हैं और 'प्रगतिशीलता' 'बिछाई' जाती है। जब अपनी बेटी पर से मां का यकीन उठ जाता है, वह प्रसंग हृदय विदारक है। जिसने अपनी कोख से जना है उस अनिता को, वह उसके हृदय की हकीकत पर यकीन नहीं कर पाती। यह दृश्य उद्वेलित कर देता है। मां बेटी के इस तथ्य और तर्क पर यकीन नहीं करती है कि उसके साथ बलात्कार नहीं हुआ—"हाथ आई को मर्द छोड़ता है कहीं?" अनिता की मां और उसके पूरे परिवार में, तमाम प्रगतिशीलता और सामाजिक आधुनिकता के बावजूद, थोथी और ढोंगी मान्यताओं में जी रहे समाज की प्रेतछाया अनवरत घनीभूत रहती है। समाज का यह भय इतना क्रूर हो जाता है कि बेटी पर मां यकीन करना नहीं चाहती। अपने अंदर पैठे भय का वह आश्रय ले लेती है—"तू काढ़ा पी चुपचाप।" तब अनिता को दिखता है खोखले आडंबरों का क्रूर चेहरा और वह सोचती है—"प्रेम, वात्सल्य, शुभेच्छा, झूठे शब्द हैं। अपनी-अपनी कुंठाओं का पर्याय।" वह चेतती है—"वे जो जीवन के नाम पर जीना उसे सौंपना चाहते हैं, वह पग-पग पर उनकी शर्तों के तैयारशुदा फंदों में स्वयं को कसना नहीं होगा!" लेखिका खोखले आडंबरों के खिलाफ खुलेआम खड़े हो जाने की हद तक चेतना को आयाम देने की कोशिश करती दिखती है। परंपरा में परिवर्तन की सार्थकता यहां वह सिद्ध करती है।

'जिनावर' संग्रह की शीर्षक कहानी है और संवेदना के स्तर पर गहरे छूती है। मगर इसमें, चित्राजी जिन विचारों की मीमांसा के लिए मशहूर हैं, वह दूर-दूर तक परिलक्षित नहीं हो पाती।

चित्रा मुद्गल की इन कहानियों में एक और नई बात यह है कि 'अनुभव को संश्लिष्टता में रचने और संवारने का हुनर' परिलक्षित होता है। वे कहानी को 'कहानी' की तरह नहीं देखतीं। उनकी कहानियां एक गहरे और विस्तृत निजी अध्ययन का आभास कराती हैं।

चित्रा मुद्गल की पहचान जितनी स्पष्ट रही है, वैसे उस लिहाज से यह होना ही चाहिए था। मगर इस संग्रह की कुछ कहानियां वैचारिक विचलन की शिकार हुई हैं। कथा लेखिका वैचारिक पृष्ठभूमि पर तटस्थ कभी नहीं रही, मगर यहां वह कहीं खामोश रहीं, तो कहीं विचलित हुई हैं। चित्राजी का यह वैचारिक विचलन अपरोक्षतः कई सवाल छोड़ जाता है। 'बाघ' में पुरोहित जी को लगता है कि *'दिल्ली ही नहीं, सरकार ने समूचे देश के तड़ीपारों को जमुनापार लाकर बसा दिया है। वे तड़ीपार, इलाके की कानून और व्यवस्था* को अपने हाथों तिनगी-सा नाच नचा रहे। जिनके बीच रहना जीवन-पर्यंत आतंक और

असुरक्षा में जीना होगा।' चूंकि पुरोहित जी की बेटी नैनी को साऊथ दिल्ली में कॉलेज जाना पड़ता है और एक दिन कुछ गुंडे किस्म के छोकरों ने लड़कियों की बस को अपहृत करने की कोशिश की। अपहर्त्ता साऊथ दिल्ली के पास पहुंचते ही लोगों की आवाजाही से भयभीत हो बस को मुक्त कर भाग खड़ा हुआ। नैनी या उसकी साथिनों को कुछ हुआ नहीं। मगर उसी साऊथ दिल्ली में रहने वाला पुरोहित जी का शुभचिंतक दोस्त 'ग की पीठ' बाघ जैसी कांटेदार क्यों हो गई? 'बाघ जैसी पीठ' को छोड़ भी दें, तो 'साऊथ दिल्ली के किसी पॉश कॉलोनी जैसी ही एक सोसाइटी की बहुमंजिली बिल्डिंग में रहने वाली 'अढ़ाई गज की ओढ़नी' वाली उमा की नन्ही बेटी प्रिया ने गुड्डे-गुडिया के खेल में असली 'हनीमून' जिस सहज सहमति से मनाया, उस पर कथाकार का दृष्टिकोण कहीं नहीं है।

संग्रह में ग्यारह लघुकथाएं भी हैं, जो स्पर्श करती हैं। जीवन के टुकड़े-टुकड़े अनुभवों, घटनाओं-परिघटनाओं को बड़े ही सहज ग्राह्य शिल्प में संजोया है चित्रा जी ने। मगर चित्राजी की ये लघुकथाएं लघुकथा के मानदंडों पर खरी नहीं उतर पाई हैं। अक्सर ऐसा हुआ है कि एक अच्छा कहानीकार एक सफल उपन्यासकार बन जाता है, मगर एक अच्छा उपन्यासकार सफल कहानीकार नहीं बन पाता। चित्राजी भी सफल कहानीकार तो हैं, परंतु सफल लघुकथाकार नहीं बन पाईं।

बहरहाल, सात कहानियों एवं ग्यारह लघुकथाओं का यह संग्रह चित्रा मुद्‌गल के भाविक चमत्कारों और संवेदना के स्तर पर बेचैन करते कथ्यों के कारण पठनीय अवश्य है। वे 'नए जमाने की रफ्तार में फ़ंसी जिंदगी की मज़बूरियों के तहत अपसंस्कृति की गर्त में धंसते जा रहे आधुनिक मानवीय मूल्यों की स्तब्ध कर देने वाली तस्वीर' उकेरने में सफल रही हैं। मानव, जीवन, समाज, संस्कृति, सभ्यता और आधुनिकता के नाम पर जिंदगी का जरूरी हिस्सा बन चुके उपभोक्तावाद की विवशताओं के कारण बदलते मूल्यों की कहानियां 'जिनावर' में संकलित हैं। हरेक कहानी अपसंस्कृति की ऊंची होती जा रही मीनार को आंकती प्रतीत होती है।

आवरण चित्र सत्यसेवक मुखर्जी ने बनाया है और फ्लैप पर (स्व.) प्रभाकर माचवे द्वारा बनाया गया चित्राजी का स्केच है। मुखर्जी को 'जिनावर' की जानकारी नहीं थी शायद, वरना वे स्त्रियों को 'जिनावर' (घोड़ी) तो नहीं बनाते। या फिर इस संग्रह का नाम 'प्रेतयोनि' ही होना चाहिए था। □

जिनावर (कहानी-संग्रह)/लेखिका : चित्रा मुद्‌गल/प्रकाशक : किताबघर, 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002/मूल्य : 75/- रुपए

आदमी के शोषण, उत्पीड़न और उपभोक्तावाद की वस्तु : नारी

दीपशिखा सिकरवार

'नर-नारी' कृष्ण बलदेव वैद का आठवां उपन्यास है। यह पश्चिमी जगत की तरह नारी जागरण और मुक्ति पर आधारित है। आज भारतीय नारी भी पुरुष की बराबरी पर खड़ी होने की जद्दोजहद में लगी है। वह अपने हक की लड़ाई बड़ी शिद्दत के साथ लड़ रही है—कहीं अकेली, कहीं सामूहिक रूप में। यह लड़ाई गांवों की अपेक्षा शहरों में बड़ी तेजी से लड़ी जा रही है। हालांकि शहरों और कस्बों के आसपास के गांवों की नारी के अंदर भी नवजागरण तेजी से हो रहा है, लेकिन रिश्तों और पुराने संस्कारों, विधि-निषेधों तथा रूढ़ियों की जकड़नों के कारण उतनी तेजी से पनप नहीं पा रहा है। ग्रामीण नारी का संकोची मौन और सैकड़ों-हजारों वर्षों से मन की गहराइयों में छुपा बैठा घर, परिवार तथा समाज का भय, शर्म का भूत भी उसके पनपने में बहुत बड़ी बाधा बना हुआ है। लेकिन शहरों और खासतौर पर महानगरों में अब नारी के लिए वैसी बात नहीं रही। महानगरों में घर-परिवार और सामाजिक संघठनों का बिखराव, रिश्तों का टूटना, औद्योगिकीकरण, उपभोक्तावादी संस्कृति और संस्कारों का प्रभाव, नौकरी तथा हर क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा का भाव नारी को अपने अधिकारों के प्रति निरंतर जागरूक कर रहा है। फिर भी नारी को पुरूषों के शोषण, उत्पीड़न तथा उपभोग की वस्तु बने रहने से छुटकारा नहीं मिल पा रहा है। इसी छटपटाहट का एक अद्भुत दस्तावेज है वैद का यह उपन्यास 'नर-नारी' जो दस मुख्य पात्रों के सहारे दस अध्यायों में फैला है और ये दस पात्र कुछ अन्य पात्रों के साथ एक दूसरे में घुले-मिले हैं।

इस उपन्यास 'नर-नारी' की कहानी बांझ मांजी से शुरू होती है और बांझ मांजी पर ही समाप्त होती है। शेष नौ प्रमुख तथा अन्य कुछ सहयोगी या संबद्ध पात्र प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से बांझ मांजी के इर्द-गिर्द ही घूमते नजर आते हैं। बांझ मांजी एक ऐसी दबंग महिला है जो नारी शोषण की शिकार भी हैं, गवाह भी, वादी-प्रतिवादी भी, स्वयं ही अपनी वकील भी और स्वयं ही अपनी जज भी। वह अपने पति से मार भी खायी है, उसकी नपुंसकता से समझौता भी कर लिया है, चोरी-छिपे हर तरह की भूख भी पूरी-पूरी मिटाती है और तमाम रहस्यों को अपने बेबाक मन के भीतर दबाये बैठी-लेटी है। उनके पास यादों की अकूत संपत्ति भी है और पढ़ी-लिखी समझदार तथा साहसी और उदास युवतियों के लिए ढेरों संदेश भी। उनको बांझ कहा जाना उन्हें कभी नहीं सालता क्योंकि वे जानती हैं कि वह बांझ नहीं हैं, बेऔलाद हैं। वे इस शब्द पर मन ही मन खूब हंसती हैं और कहती हैं—"जब सोचती हूं तब सुहागन बांझ एक गाली क्यों, इसमें औरत का क्या दोष अगर मर्द नामर्द हो तो ... सच्चाई हमेशा सौ पर्दों में क्यों ... हर बेऔलाद औरत को बांझ क्यों ... औरत पर इतने अत्याचार। वैसे औरतों का अपना भी दोष। हम इतनी दुर्बल क्यों। हर औरत में बेटे की भूख क्यों। हर सास बहू की दुश्मन क्यों ... हर नारी का अपना नर्क, हर नर्क की अपनी पीड़ा ... मुझे बांझ का खिताब क्या करें बेचारियां बचपन से इनके कानों में यही कूड़ा नारी का धर्म। जो बेऔलाद वह बांझ मर्द लूला लंगड़ा भी औरत से बेहतर। बेटा बुढ़ापे का सहारा बेटी पराया धन। हर औरत को अपने से नफरत करना सिखाया जाता है।"

इस उपन्यास में सबका अपना-अपना दर्द है। मर्द का दर्द इतना ही है कि वह हर अत्याचार और अपमान करने के बावजूद अपनी जोरू पर काबू नहीं रख पा रहा है, उसे दबा कर नहीं रख पा रहा लेकिन औरत का दर्द कई स्तरों पर है और बहुत बड़ा है। हर मर्द उसे अपनी नज़र से देखते हैं। कभी औरत को औरत की नज़र से देखने की कोशिश ही नहीं करते औरत को ही हर बात के लिए दोषी ठहराते हैं। इस उपन्यास की एक और प्रमुख प्राण रसीला इसका प्रमाण। उसने तो औरत को औरत की नजर से और पुरुष को पुरुष की नजर से देखा, परखा और पहचाना। इसीलिए वह अपने सगे भाई राजेश को सुअर संज्ञा दी, उसकी हमदर्दी अपनी मम्मी के प्रति न होकर सुअर (राजेश) की पत्नी सीमा के प्रति है। राजेश घर आने पर हमेशा अपनी मम्मी की गोद में दुबका रहता था सीमा से सम्मान और प्यार के दो बोल भी नहीं बोलता। उसे हमेशा नफरत और शक की नजर से ही देखता है। दरअसल नफरत-नफरत को, प्यार-प्यार को जन्म देते हैं ये प्रकृति न्याय और विज्ञानसम्मत अटल नियम हैं—इसे मां-बेटे दोनों ही नहीं जानते और न जानना ही चाहते हैं। सुअर कभी-कभी गुस्से में आकर सीमा से बलात्कार करना अपना अधिकार समझता है लेकिन उसमें भी सफल नहीं होता। वह मम्मी के सामने शेखी बघारने भर का

ही मर्द है। प्रतिक्रिया स्वरूप सीमा ऑफिस के बाद अपने पुराने प्रेमी सागर से मिलने जाती है अपनी सहेली मीनू की बरसाती में। वहीं अपनी भूख-प्यास मिटाती है। मीनू बाहर लेटकर पहरेदारी करती है। मीनू भी एक अद्भुत पात्र है। सागर एक स्वार्थी पात्र। वह अपनी पत्नी और बच्चों के पास से खिसक कर सीमा के पास आता है। उसे भी सीमा की इच्छा-अनिच्छा का कोई ख्याल नहीं। उसे सिर्फ अपनी भूख का ही ख्याल है। एक तरह से वह भी सीमा के साथ बलात्कार ही करता है। इसीलिए सीमा को सागर में भी सुअर ही नजर आने लगता है। सीमा को भी रसीला और अपने पति की सगी बुआ बांझ मांजी ही पसंद है। उन्हीं के पास उसे सुख और शान्ति मिलती है।

इस उपन्यास को लेकर काफी प्रश्न चिह्न लगाए गए। किसी ने इसे अश्लील कहा। किसी ने फेमिनिस्ट कहा। किसी ने औरत का विरोधी कहा और उनके सीने, जंघाओं को अपनी अश्लील नज़र से नंगा करके चटखारे भी लगाए। लेकिन सबने या अधिकांश ने इसे सिर्फ 'मर्द' की नज़र से देखने का जो साहस कृष्ण बलदेव वैद ने किया उसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। मेरी दृष्टि में यह नारी के दुख-दर्द, उत्पीड़न, शोषण और उसे उपभोग की वस्तु समझने वाले पुरुष समाज तथा पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था पर एक गहरी चोट है। जहां तक भाषा-शैली का सवाल है वह उनकी अपनी है, जानी-पहचानी है और यही हिंदी साहित्य में उनकी एक अलग पहचान भी बनाए हुए हैं। □

'नर-नारी' लेखक : कृष्ण बल्देव वैद; प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्स; पृष्ठ : 223; डिमाई साइज; मूल्य : 175 रुपए

सांस्कृतिक घटनाक्रम

राजेंद्र उपाध्याय

प्रतिवर्ष की तरह इस वर्ष भी 22 भारतीय भाषाओं के लेखकों (इनमें नेपाली और अंग्रेजी भी शामिल हैं) को साहित्य अकादमी पुरस्कार 18 फरवरी को अर्पित किए गए। नाटककार सुरेंद्र वर्मा को उनके उपन्यास 'मुझे चांद चाहिए' के लिए हिंदी का पुरस्कार दिया गया। पुरस्कार समारोह से पहले उन्होंने चाय पर बताया कि इस उपन्यास पर दूरदर्शन धारावाहिक भी बना रहा है और उनका नया उपन्यास 'दो लाशों के लिए फूलों का हार' भी लगभग तैयार है। जासूसी उपन्यास जैसे शीर्षक कला पर यह उपन्यास देखें क्या गुल (फूल) खिलाता है? एक नाटककार कैसे रातोंरात उपन्यासकार हो गया और विजय तेंदुलकर भी तो उपन्यास लिख रहे थे?

अकादमी में प्रतिवर्ष पुरस्कार समारोह के अवसर पर संवत्सर व्याख्यान भी आयोजित होता है जिसमें प्रतिष्ठित लेखक होते हैं। इस बार कोमल कोठारी के दो व्याख्यान 'कथा एवं लिखित साहित्य में निरंतरता' विषय पर आयोजित थे—पर बीमारी के कारण वे नहीं आ सके और अकादमी को निर्मल वर्मा के बंगलूर में दिए बासी अंग्रेजी वक्तव्य से क़ाम चलाना पड़ा।

इंडिया इंटरनेशनल में 'सृजनात्मकता से परे : सदी के मोड़ पर भारतीय सांस्कृतिक जीवन के समक्ष समस्याएं' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी में कायदे से गंभीर चर्चा कम ही हो पाई। हालांकि वक्ता निर्मल वर्मा, वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य, भीष्म साहनी, एम.के. रैना, प्रसन्ना, रामाश्रय राय, दीपंकर गुप्त, कुमारेश चक्रवर्ती, हिरण्मय कालेकर, जी.एन. देवी, मकरंद परांजये, मीनाक्षी मुखर्जी, हरीश त्रिवेदी, वी.आर. कृष्णा अय्यर, कर्त्तार सिंह दुग्गु, मृणाल पांडे, गोपीचंद नारंग, नामवर सिंह, देवेश राय, अजीत कौर, अशोकमित्रन जैसे सभी अपने-अपने क्षेत्रों के सिद्धहस्त विद्वान थे। हमेशा की तरह इस बार भी प्रश्न पूछने वाले

श्रोता उत्पात मचाते रहे। अकादमी अध्यक्ष यू.आर. अनंतमूर्ति और सचिव सच्चिदानंद को इनके खिलाफ 'खड्गहस्त' होना पड़ा।

इस वर्ष ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित बांग्ला लेखिका महाश्वेता देवी ने अकादमी में 12 मार्च को 'साहित्य में जनजातीय लोगों का चित्रण' विषय पर अच्छा व्याख्यान दिया। उन्होंने सभी देशों की जनजातीयों में मूलभूत एकरूपता पर जोर दिया। उन्होंने इनकी संस्कृति और साहित्य की मौलिकता को बचाए रखने के लिए इन्हें 'जस का तस' रखने पर भी बल दिया। हम इनकी संस्कृति को 'परिष्कृत' करके उसे नष्ट कर देते हैं। महाश्वेता देवी स्वयं किसी संथाल जनजाति की लगती है, उनमें कुर्रितुल ऐन हैदर जैसा ग्लैमर नहीं है। उचित ही है उन्हें अश्वेत नेता नेल्सन मंडेला के हाथों उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार दिया गया।

यह राजधानी के साहित्य संस्कृति प्रेमियों के लिए सुखद है कि अब अकादमी का हाल कवियों-संस्कृति प्रेमियों की शोक सभा के लिए आसानी से उपलब्ध होने लगा है। पहले यहां ज्ञानपीठ-अकादमी पुरस्कार प्राप्त लेखकों की ही शोकसभाएं हो पाती थीं। कई बार वह भी नहीं होती थी। इस बार साहित्य अकादमी सभागार में अनेक कवियों-लेखकों-कलाकारों ने चित्रकार कवि गुलाम रसूल संतोष, चित्रकार-कवि करूणानिधान मुखर्जी, कवि कुमार विकल और कवि-अधिकारी राजेश शर्मा को श्रृद्धांजलि अर्पित की। वक्ताओं ने एकमत से कहा कि ऐसा लगता है जैसे मृत्यु हमारे सामने थोक में परोस दी गई हो। गुलाम रसूल संतोष ने कश्मीर की विस्मृत होती जा रही 'तंत्र परंपरा' को अपनी कविता और कला का स्त्रोत बनाया। करूणानिधान की बच्चों जैसी हंसी और प्यार भी हम बचाकर नहीं रख सके। इस उम्र में भी वे संघर्ष कर रहे थे। राजेश शर्मा की लखनऊ की चौदह मंजिला इमारत से कूदकर आत्महत्या करना स्तब्ध करने वाला अनुभव है। जिन मध्यम वर्गीय विडंबनाओं में फंसकर उन्होंने आत्महत्या की, उसमें हम सभी फंसे हुए हैं। अचानक कई संस्कृतिकर्मियों के निधन की सूचनाएं आतंकित करने वाली हैं। हमारी पीढ़ी के लिए यह दौर कई मामलों में अकेला कर देने वाला बनता जा रहा है।

संस्कृति के प्रचार प्रसार में पुस्तकालयों का महत्व निर्विवाद है। पिछले दिनों अमेरिकन सेन्टर लाइब्रेरी ने अपनी स्थापना की पचासवीं वर्षगांठ मनाई। लंबे समय तक इसके सदस्य रहे दिल्ली के उपराज्यपाल श्री तेजेन्द्र खन्ना ने समारोह की अध्यक्षता की। कालांतर में अनेक पत्रकार, बुद्धिजीवी, संस्कृतिकर्मी, कवि लाभान्वित होते रहे हैं। थके, बूढ़े, परेशान नागरिक भी यहां की वातानुकूलित व्यवस्था में सुकून पाते रहे हैं किन्तु अब यहां प्रवेश प्रतिबंधित कर दिया गया है। केवल उन्हीं को प्रवेश दिया जाएगा जो 200 रुपया वार्षिक दे सकने में समर्थ हों। देश में पुस्तकालय संस्कृति का वैसे भी ह्रास होता जा रहा है।

रूसी सांस्कृतिक केंद्र के पुस्तकालय और भारत रूस साहित्यिक क्लब की ओर से संस्था के महासचिव प्रेम जनमेजय के संयोजन में नई-नई पुस्तकों की अच्छी चर्चा की जाती

है। इस बार उपेंद्र कुमार के 'चुप नहीं है समय' और जगदीश चतुर्वेदी के 'कहीं कुछ कुरेदता है मुझे' कविता संग्रहों पर सुधी समीक्षकों ने चर्चा की। इस अवसर पर रूसी सांस्कृतिक केंद्र के श्री आन्देई नज़ारकिन ने प्रसिद्ध रूसी लेखक निकोलाई गोगोल पर भी एक वार्ता दी। वरिष्ठ आलोचक डॉ. नगेंद्र मुख्य अतिथियों और डॉ. रामदरश मिश्र ने समारोह की अध्यक्षता की।

भारतीय अनुवाद परिषद भी सीमित साधनों के बावजूद हिंदी भाषा और अनुवाद से संबंधित कई कार्यक्रम आयोजित करती है। 'अनुवादक से संवाद' और अनुवाद पर व्याख्यान के अलावा यह श्रेष्ठ अनुवादकों को पुरस्कृत भी करती है। इस बार पंद्रह मार्च को इसने राष्ट्रीय संग्रहालय सभागार में भारत सरकार के राजभाषा विभाग सहयोग से 'राजभाषा, अनुवाद एवं नागरी लिपि' पर एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की। जिसमें संसद सदस्य श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी ने अध्यक्षता की और न्यायमूर्ति श्री प्रेमशंकर गुप्त ने मुख्य भाषण दिया। अदालती कामकाज में राजभाषा के प्रयोग न होने पर आपने खेद प्रकट किया। इसमें राजभाषा विभाग के श्री देवस्वरूप, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो के निदेशक श्री राजकुमार सैनी के अलावा डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, डॉ. ब्रजकिशोर शर्मा, डॉ. परमानंद पांचाल और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के श्री सतकडि मुखोपाध्याय ने भी भाग लिया।

उर्दू एकेडेमी के युवा उर्दू शायर शीन काफ़ निज़ाम की शायरी की किताब 'बयाजें खो गई है' का लोकार्पण प्रख्यात उर्दू आलोचक डॉ. गोपीचंद नारंग ने 13 मार्च को किया। निज़ाम ने इस अवसर पर अपनी अच्छी शायरी सुनाई। उर्दू एकेडेमी ने इंडिया इंटरनेशनल सेन्टर में 'उत्तर आधुनिकता' पर भी राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की।

राजधानी की सिन्धी अकादमी प्रख्यात साहित्यकार डॉ. मोतीलाल जोतवाणी के नेतृत्व में फिर सक्रिय हुई है। पिछले दिनों इसने 'सिन्धी लोक उत्सव' मनाया।

साहित्य अकादमी कुछ चुने हुए साहित्यकारों को अपनी महत्तर सदस्यता प्रदान करती है। और उन पर केंद्रित 'संवाद' का आयोजन करती है। पिछली बार इसने कृष्णासोबती पर संवाद का आयोजन किया था जिसमें सुधीश पचौरी, देवेंद्र इस्सर ने भीष्म साहनी की अध्यक्षता में कृष्णाजी के लेखन पर प्रकाश डाला। इस बार 27 मार्च को विद्यानिवास मिश्र पर संवाद आयोजित है—जिसमें डॉ. रमेश चंद्र शाह, डॉ. नंदकिशोर आचार्य और डॉ. रामेश्वर मिश्र 'पंकज' पंडित जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालेंगे।

मध्य प्रदेश की संस्था 'सतपुड़ा लोक संस्कृति परिषद्' ने चर्चित व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय को इस वर्ष का हरिशंकर परसाई स्मृति पुरस्कार देने की घोषणा की है। ग्यारह हजार रुपए का यह पुरस्कार संस्था द्वारा मई में दिया जाएगा। डॉ. शेरजंग गर्ग को गोपालदास व्यास के जन्मदिन पर 'व्यंग्यश्री' सम्मान से सम्मानित किया गया। □

रास पुटिन के उपन्यासों पर सार्थक बातचीत

कुलदीप अहूजा

इंडो रशियन लिटरेरी क्लब भारतीय और रूसी साहित्य पर सार्थक बातचीत करने का एक महत्वपूर्ण मंच बन गया है। पिछले कुछ वर्षों में भारतीय साहित्य और रूसी साहित्य के विभिन्न मुद्दों पर हुई गोष्ठियां चर्चा में रही हैं। इन गोष्ठियों में राजधानी के प्रायः सभी प्रमुख साहित्यकार सम्मिलित हुए हैं। इसी क्रम में पिछले दिनों साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित तथा प्रो. हेमचंद्र पांडेय द्वारा अनूदित रास पुटिन के तीन उपन्यासों—आग, अंतिम घड़ी और वापसी, पर विशद् चर्चा हुई। प्रो. हेमचंद्र पांडेय ने इन उपन्यासों को सीधे रूसी भाषा से अनुदित किया है। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे साहित्य अकादमी के अध्यक्ष यू. आर. अनन्तमूर्ति, विशिष्ट अतिथि थे रूसी दूतावास के डॉ. अनवर अजिमोव तथा अध्यक्षता की डॉ. नामवर सिंह ने। मुख्य वक्ताओं में उपस्थित थे—राजेन्द्र यादव, साहित्य अकादमी के सचिव, के. सच्चिदानंदन, डॉ. गंगाप्रसाद विमल, वरयाम सिंह, डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, प्रो. हेमचंद्र पांडेय, मंगलेश डबराल और जौरी एस. सिकोलिया। कार्यक्रम का संचालन इंडो रशियन लिटरेरी क्लब के महासचिव डॉ. प्रेम जनमेजय ने किया। आरंभ में प्रेम जनमेजय ने रास पुटिन का जीवन परिचय देते हुए तीनों उपन्यासों की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की।

अतिथियों का स्वागत करते हुए रूसी सांस्कृतिक तथा विज्ञान केंद्र के निदेशक जौरी एस. सिकोलिया ने प्रसन्नता व्यक्त की कि राजधानी के महत्वपूर्ण रचनाकारों के सहयोग से रूसी साहित्य पर महत्वपूर्ण बातचीत हो रही है। उन्होंने 'तनी हुई प्रत्यंचा' पर हुई अविस्मरणीय गोष्ठी का भी स्मरण किया। उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त की कि इंडो रशियन लिटरेरी क्लब द्वारा आयोजित गोष्ठियों को सभी वर्ग के रचनाकारों का सहयोग मिल रहा है।

इन उपन्यासों के अनुवादक हेमचंद्र पांडेय ने चर्चा आरंभ करते हुए कहा कि अनुवाद

के लिए आवश्यक है कि रचना से पूरा तदात्म्य स्थापित किया जाए। पूरी रचना जब तक हमारे अंतर्मन में नहीं होगी, उसके सत्य को हम पकड़ नहीं पाएंगे।

डॉ. कृष्ण दत्त पालीवाल ने अपनी बात को आम उपन्यास पर केंद्रित रखा। उन्होंने उपन्यास की कथावस्तु की प्रशंसा करते हुए कहा कि उपन्यासकार ने एक रात में पूरे उपन्यास को समेट लिया है। उन्होंने अनुवाद की भी प्रशंसा की जिसने आग को भारतीय परिवेश से जोड़ दिया। उन्होंने कहा कि हेमचंद्र पांडेय ने रचना की पुनर्रचना की है।

डॉ. वरयाम सिंह ने इस बात को रेखांकित किया कि संभवतः हिंदी में रूसी भाषा से सीधे अनूदित होने वाला यह पहला उपन्यास है। स्वयं रूसी भाषा से हिंदी में अनुवाद करने वाले वरयाम सिंह ने एक अनुवादक के उत्तरदायित्वों और कठिनाइयों की भी चर्चा की।

डॉ. गंगाप्रसाद विमल ने इसकी अर्थमय भाषा की प्रशंसा की। उन्होंने रास पूटिन के इन उपन्यासों की प्रशंसा की और कहा कि उनकी रचनाओं में उनके समय का यथार्थ प्रतिबिम्बित होता है।

साहित्य अकादमी के सचिव के. सच्चिदानंदन का मानना था कि ऐसे प्रयास एक साहित्यिक पुल का निमार्ण करते हैं। भारत और रूस के लोग एक समान बिंदु पर खड़े हुए हैं। गोष्ठी में मंगलेश डबराल ने भी अपने विचार व्यक्त किए।

प्रख्यात कथाकार राजेंद्र यादव ने कहा कि विकास करने वाला समाज लगभग एक जैसी स्थितियों से गुजरता है। श्री यादव ने रास पुटिन के उपन्यासों से मिलती जुलती अनेक भारतीय लेखकों की कृतियों का भी उल्लेख किया।

अध्यक्षीय भाषण में डॉ. नामवर सिंह ने कहा कि रूसी विज्ञान तथा सांस्कृतिक केंद्र अनेक महत्वपूर्ण गोष्ठियों का केंद्र बन गया है। भारतीय रूसी साहित्य पर आयोजित ये गोष्ठियां हमारी साहित्यक और सांस्कृतिक आवश्यकता है। साहित्य अकादमी का धन्यवाद है अपने रूसी साहित्य के प्रति प्रेम के लिए।

उन्होंने कहा कि भारतीय साहित्य अपने आरंभिक दौर से ही जिस केंद्र की तलाश में रहा है, रूसी साहित्य का ताना बाना भी करीब-करीब उसके समरूप ही है, और यह अकारण नहीं हैं कि जिस साहित्यिक चेतना की लहर रूस से प्रारंभ हुई उसका सबसे ज्यादा प्रभाव भारतीय लेखकों पर पड़ा। पिछले एक दशक में बहुत सारे परिवर्तनों के बावजूद भारत व रूस के सांस्कृतिक संबंध केवल मजबूत ही नहीं हुए हैं, बल्कि अब संबंधों के पुल मुकामलात की ओर भी अग्रसर हैं। इसमें इंडो रशियन लिटरेरी क्लब अपनी भूमिका निभा रहा है।

डॉ. नामवर सिंह ने कहा कि आधुनिकता का सबसे पहला आलोचक रूस ने ही पैदा किया। यही वजह है कि रूसी यथार्थवाद में सच कहने की परंपरा है।

साहित्य अकादमी के अध्यक्ष प्रो. अनंतमूर्ति ने वैचारिक बहस व साहित्यक योगदान

में रूसी सांस्कृतिक केंद्र को हर संभव सहयोग देने का आश्वासन दिया। उन्होंने साहित्य अकादमी के रूसी साहित्य के प्रति लगाव की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि साहित्य अकादमी के प्रांगण में पुश्किन की मूर्ति विद्यमान है।

रूसी दूतावास से आए डॉ. अनवर अजिमोव ने साहित्य अकादमी के प्रयासों की सराहना की तथा उन्हें धन्यवाद दिया। □

राजभाषा सम्मेलन का आयोजन

रचना सिंह

पूर्व सांसद एवं सुप्रसिन्ध साहित्यकार श्री शंकर दयाल सिंह की 60वीं जयंती के उपलक्ष्य में 28 दिसम्बर को राजभाषा सम्मेलन का आयोजन, राजेन्द्र भवन (दीनदयाल मार्ग) में किया गया।

समारोह का उद्घाटन डॉ. कर्ण सिंह सांसद ने दीप प्रज्ज्वलित कर किया। इससे पूर्व श्री शंकर दयाल सिंह के चित्र पर माल्यार्पण कर उन्होंने अपनी श्रृद्धांजलि अर्पित की।

सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए डॉ. कर्ण सिंह ने कहा कि हिंदी के प्रचार और विकास के लिए एक केंद्र की स्थापना होनी चाहिए जिसमें हिंदी बुद्धिजीवियों के लिए वैचारिक बहस करने की सभी सुविधाएं हों। उन्होंने कहा कि हिंदी के विकास और प्रचार के लिए अनेक प्रकार की गोष्ठियां एवं सम्मेलन आयोजित किए जाते हैं परन्तु यदि राजेन्द्र भवन जैसे स्थल पर हिंदी बुद्धिजीवी एकत्र होकर देश की ज्वलंत समस्याओं पर चर्चा करें तो ऐसी बहस हिंदी के लिए अधिक उपयोगी हो सकती है। उन्होंने कहा कि हिंदी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं का भी विकास होना चाहिए। उन्होंने इस बात पर हर्ष व्यक्त किया कि भारतीय संसद द्विभाषी हो गई है।

इस अवसर पर तब विदेश मंत्री रहे श्री इंद्र कुमार गुजराल ने कहा कि हमारी विदेश नीति बुनियादी विचारों पर खड़ी है क्योंकि हमने इसका निर्धारण स्वतंत्रता आंदोलन के माध्यम से किया है। श्री गुजराल ने कहा कि जो देश ये स्वप्न देखते हैं कि वे सुरक्षा परिषद के सदस्य बन जाएंगे वैसे हम नहीं देखते, क्योंकि सी.टी.बी.टी. का मतलब है कि सभी तरफ अमरीकी आदेशों के नीचे झुक जाना और हमारा देश ऐसा नहीं जो किसी के आगे झुक जाए। उन्होंने कहा कि संयुक्त मोर्चे की सरकार आने के बाद पड़ोसी देशों से हमारे संबंध

बेहतर हुए हैं। उन्होंने कहा कि अमेरिका का झुकाव भी पाकिस्तान की बजाय भारत की ओर बढ़ा है। उन्होंने कहा कि आज श्रीलंका, नेपाल, बांग्लादेश सहित सभी देशों से हमारे संबंध बेहतर हुए हैं और इस कारण भारत विश्व में एक ताकत के रूप में उभर सकता है। श्री शंकर दयाल सिंह को स्मरण करते हुए श्री गुजराल ने कहा कि देश के राजनीतिक परिदृश्य पर आज जो स्थितियां बनी हुई हैं उसमें उन जैसे लोगों की जरूरत और भी बढ़ जाती है।

पहले विषय सत्र में "भारतीय भाषाओं के बीच सेतु की तलाश" पर चर्चा करते हुए दक्षिण भारत के हिंदी विद्वान तथा चंदा मामा जैसे लोकप्रिय पत्रिका के पूर्व संपादक डॉ. बाल शौरी रेड्डी ने समस्त भारतीय भाषाओं के लिए समान लिपि अपनाने पर बल दिया।

सांसद प्रो. चन्द्रकला पाण्डेय ने कहा कि देश के 15 करोड़ लोगों की भाषा हिंदी है। उन्होंने इस बात को बहुत संतोषजनक बताया कि पं. बंगाल में त्रिभाषा फार्मूला लागू है। प्रो. चन्द्रकला पाण्डेय ने कहा कि बंगाल में अब सांप्रदायिकता विरोधी हिंदी की कहानियों का बंगला भाषा में भी अनुवाद होगा। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय स्तर पर भी इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य हो रहा है। उन्होंने चुटकी लेते हुए कहा कि अब एक नई बात सामने आ रही है कि लड़के इस लिए हिंदी नहीं पढ़ते कि इससे दहेज कम मिलता है जबकि लड़कियां कहती हैं कि उनकी शादी अच्छी जगह नहीं हो रही। अतः लोगों की मानसिकता को बदलना होगा। उन्होंने कहा कि हिंदी की महानता को नकारा नहीं जा सकता। फिल्म उद्योग ने हिंदी को रोजी-रोटी से जोड़ा है। आम लोगों के बीच हिंदी फिल्मों ने बहुत बड़ा काम किया है। परंतु उन्होंने कुछ टी.वी. केबल चैनलों द्वारा हिंदी का दुरूपयोग किये जाने पर अफसोस प्रकट किया। उन्होंने कहा कि दोहरी मानसिकता के कारण ही हिंदी को उसका उचित स्थान नहीं मिल रहा।

इस सत्र के अध्यक्ष श्री डॉ. गंगा प्रसाद विमल ने कहा कि देश के 91 प्रतिशत लोग हिंदी बोलते हैं। सम्मेलन में दो प्रस्ताव पारित किए गए—भारतीय साहित्य का एक पाठ्यक्रम हो व वैकल्पिक रूप से नागरी लिपि का प्रयोग हो। चर्चा में सुप्रसिद्ध गांधीवादी चिन्तक यशपाल जैन ने भी भाग लिया।

दूसरे विषय सत्र में 'सूचना एवं विस्फोट और राजभाषा' पर चर्चा हुई। विषय का प्रवर्तन कम्प्यूटरविद् श्री रमेश वर्मा ने किया। उन्होंने हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में कम्प्यूटर पर किये जा रहे काम की समीक्षा करते हुए विश्वास प्रकट किया कि कम्प्यूटर संस्कृति का अंग्रेजीदां माहौल बदलेगा। उन्होंने जोर देकर कहा कि ज्यादा से ज्यादा लोगों तक कंप्यूटर को पहुंचाने के लिए कंप्यूटर को हिंदी तथा भारतीय भाषाओं से जोड़ना आवश्यक है। चर्चा में श्री नारायण कुमार तथा रंजन कुमार ने भी भाग लिया। इस सत्र की अध्यक्षता केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो के निदेशक डॉ. राजकुमार सैनी ने की।

अपने समापन उद्‌बोधन में रेल मंत्री श्री रामविलास पासवान ने कहा कि भाषा को

पेट से जोड़ा जाए, तभी उसका महत्व और प्रतिष्ठा बढ़ती है।

श्री पासवान ने कहा कि पहले संस्कृत, फारसी और उर्दू शासन की भाषा थी पर अब अंग्रेजी शासन की भाषा है। उन्होंने कहा कि हिंदी को पेट से जोड़ दिया जाए तो अपने आप यह राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो जाएगी। उन्होंने कहा कि जिस तरह पानी ऊपर से नीचे की ओर बहता है, उसी प्रकार यदि वरिष्ठ अधिकारी चाहें तो दफ्तरों में हिंदी का माहौल कायम किया जा सकता है और यह उनके मंत्रालय ने कर दिखाया है। उन्होंने कहा कि अंग्रेजी प्रतिष्ठत भले ही हो, प्रेम और अपनापन अपनी मातृभाषा में ही छलकता है।

इस एकदिवसीय राजभाषा सम्मेलन का आयोजन शंकर संस्कृति प्रतिष्ठान ने भारत सरकार के राजभाषा विभाग तथा राजेन्द्र भवन निधि के सहयोग से किया था। प्रथम तथा द्वितीय विषय सत्रों का संचालन क्रमशः डॉ. हीरालाल बाछोतिया तथा डॉ. सुरेश ऋतुपर्णा ने किया। अनुष्ठान संयोजन शंकर संस्कृति प्रतिष्ठान के कार्यकारी अध्यक्ष श्री जितेन्द्र सिंह ने किया। □

रचनाकार

डॉ. रामविलास शर्मा
सी-358 विकासपुरी, नई दिल्ली-110018

लालित्य ललित
बी-3/43 पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063

डॉ. रामस्वरुप
ए-2428 टाउनशीप, (आई.डी.पी.एल) वीरभद्र, ऋषिकेश-249202

पूनम स्वरुप
ए-2428 टाउनशीप (आई.डी.पी.एल) वीरभद्र, ऋषिकेश-249202

डॉ. सुमतीन्द्र नाडिग
अध्यक्ष, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110016

पृथ्वीराज मोंगा
378 सी, जे एंड के पॉकेट दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095

क्षमा शर्मा
17 बी 1, हिंदुस्तान डाइम्स अपार्टमेंट्स, मयूर विहार, फेज I, दिल्ली-110091

गिरीश चन्द्र चौधरी
भारतेन्दु भवन, चौखम्भा, काशी (उ.प्र.)।

रवीन्द्रनाथ त्यागी
1/1, गुरु तेगबहादुर रोड II, देहरादून (उ.प्र.)

नरेन्द्र कोहली
175, वैशाली, प्रीतम पुरा, नई दिल्ली-110034

डॉ. गोपाल चतुर्वेदी
डी-II/298 विनय मार्ग, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली-110021

शंकर पुणतांबेकर
2 मायादेवी नगर, जलगांव-425002

प्रेम जनमेजय
73 साक्षर अपार्टमेंट्स, ए-3 पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110063

ज्ञान चतुर्वेदी
ए-40, अलकापुरी, भोपाल-462024

मधुसूदन पाटिल
1041, अर्बन एस्टेट-2, हिसार-125005

पूरन सरमा
124/61-62 अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर-302020

गिरीश पंकज
जी-31, नया पंचशील नगर, रायपुर।

संजीव चट्टोपाध्याय
63/2, बी.के. मैत्र रोड, कलकत्ता।

डॉ. रणजीत साहा
एम.जी. 1/26 विकासपुरी, नई दिल्ली-110018

आबिद सुरती
602 गंगा ए, जान गिढ कॉम्पलेक्स, मीरा रोड, ईस्ट थाना-401107 (महाराष्ट्र)

डॉ. राजेश कुर्मार
ए-3, गौरव अपार्टमेंट्स, प्लाट संख्या 1, पटपड़गंज, दिल्ली-110092

गुरनाम सिंह तीर
द्वारा तरसेम गुजराल 46, हरबंस नगर, जालंधर शहर-144002

तरसेम गुजराल
46 हरबंस नगर, जालंधर-144002

के. एल. गर्ग
गली नं. 1, किशनपुरा, नजदीक डी.एन. माडल स्कूल मोगा-142001 (पंजाब)

मुल्लपूडि वेंकटरमण
द्वारा घर नं. 17-26, श्रीनगर कालोनी, रोड नं. 5, दिलसुख नगर, हैदराबाद-500060

डॉ. सोमनाथ राव
द्वारा घर नं. 17-26 श्रीनगर कालोनी, रोड नं. 5, दिलसुख नगर, हैदराबाद-500060

पी.एन. विजयन
रेलवे स्कूल पोडान्नयूर, कोयम्बटूर-641023

प्रो. वी.डी. कृष्णन नंपियार
विल्लवाट्टायू, काव्युम्भागोय, त्रियूवल्ला-689102 (केरल)

गोविन्द मलही
101-ए राजकिरण एम.जी. रोड, कांडीविल्ली, मुंबई-400067

हेमा बी. मतलानी
203, पुष्पन पैलेस, ब्लॉक-ए-66, उल्हास नगर-421001

अखिलेश कुमार
14 बी, पॉकेट एल शेख सराय II, नई दिल्ली-110063

कुबेर दत्त
उप निदेशक, दिल्ली दूरदर्शन, संसद मार्ग, नई दिल्ली-110001

वेदप्रकाश अभिताभ
14/5 द्वारकापुरी, अलीगढ़ (उ.प्र.)

चंद्रिका प्रसाद शर्मा
सी-10 के. रोड, महानगर लखनऊ-226006

अकिंचन
द्वारा मदन जोशी, एस-155, सुंदर ब्लॉक शकरपुर, दिल्ली-110092

दीपशिखा सिकरवार
बी-307 पॉकेट II, मयूर विहार, फेज I, दिल्ली-110091

राजेन्द्र उपाध्याय
62 लॉ अपार्टमेंट्स, ए.जी.सी.आर. इंकलेव, दिल्ली-110092

कुलदीप अहूजा
बी-3, सेक्टर 20, नोएडा-201301

रचना सिंह
1402, त्रिशूल कॉम्पलैक्स, कौशाम्बी, जिला गाजियाबाद (उ.प्र.)